तुम्हारी क्षय

राहुल सांकृत्यायन

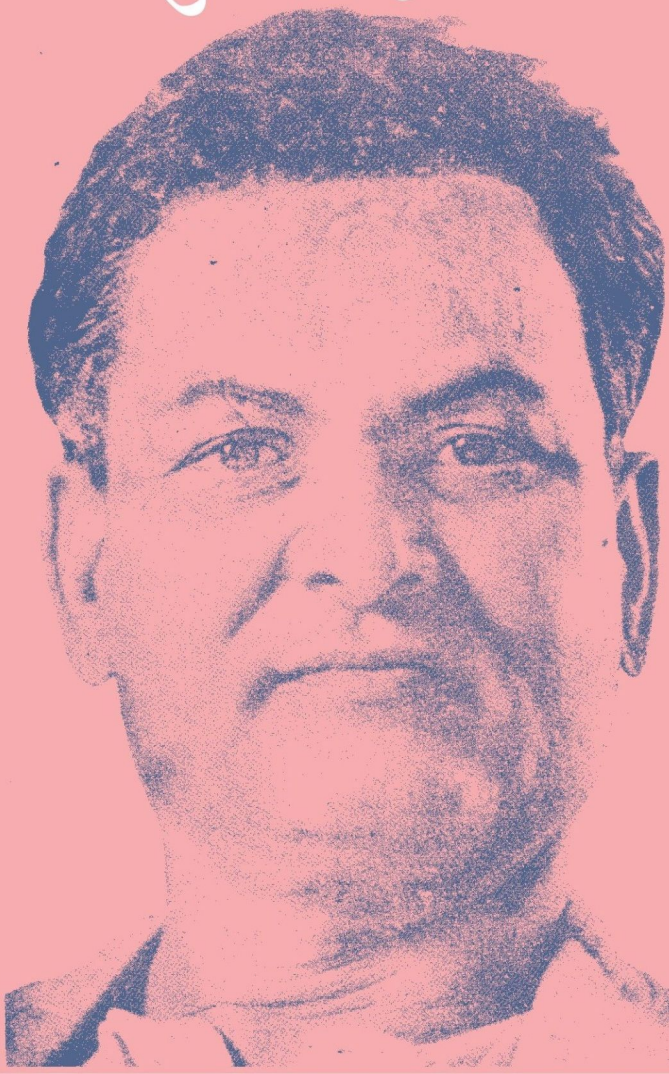

राहुल सांकृत्यायन लिखित

तुम्हारी क्षय

यह पुस्तक राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित की गई है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाई जा रही है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से खरीद सकते हैं।

ऑनलाइन लिंक : http://janchetnabooks.org/product/tumhari-kshay/

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

तुम्हारी क्षय

तुम्हारी क्षय

राहुल सांस्कृत्यायन

राहुल फ़ाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN 978-81-87728-73-3

मूल्य : रु. 40.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2006
दूसरा (संशोधित) संस्करण : जनवरी, 2008
पहला पुनर्मुद्रण : अप्रैल, 2017

प्रकाशक : **राहुल फ़ाउण्डेशन**
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ–226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : **रामबाबू**

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ

Tumhari Kshay *by* ***Rahul Sanskritayayan***

प्रकाशकीय

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेह-नीड़ों में बैठे कागज पर रौशनाई फिराया करते हैं। जनता के संघर्षों का मोर्चा हो या सामन्तों-ज़मींदारों के शोषण-उत्पीड़न के ख़िलाफ़ किसानों की लड़ाई का मोर्चा, वह हमेशा अगली क़तारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएँ झेलीं। ज़मींदारों के गुर्गों ने उनके ऊपर क़ातिलाना हमला भी किया, लेकिन आज़ादी, बराबरी और इन्सानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी क़लम रुकी।

दुनिया की छब्बीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्‌भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन, पुरातत्व, नृतत्त्वशास्त्र, साहित्य, भाषा-विज्ञान आदि विषयों पर उन्होंने अधिकारपूर्वक लेखनी चलायी। दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन-दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, साम्यवाद ही क्यों?, बाईसवीं सदी आदि रचनाएँ उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपनेआप करा देती हैं।

राहुल जी देश की शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आज़ाद कराने के लिए क़लम को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का ज़बरदस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी है। वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन के लिए गति जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध मृत्यु एवं जड़ता का। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ़ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व उसकी संस्कृति से, उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएँ करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रूढ़ियों, मूल्यों-

मान्यताओं-परम्पराओं के ख़िलाफ़ उनका मन गहरी नफ़रत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके ख़िलाफ़ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रूढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।

- राहुल फ़ाउण्डेशन

दो शब्द

'तुम्हारी क्षय' के रूप में मैंने अपने कुछ भावों को व्यक्त किया है। वस्तुतः ये भाव भी कड़े शब्दों का आग्रह रखते थे, किन्तु कुछ तो उतने कड़े शब्दों को तुरन्त प्राप्त करना मुश्किल था, और कुछ यह भी खयाल बाधक हुआ कि पुस्तक को पाठकों के पास तक पहुँचाना है।

पुस्तक छपरा-जेल में लिखी गयी थी और इसका कुछ अंश 'जनता' में निकला था।

– **राहुल सांकृत्यायन**

विषय-सूची

1. तुम्हारे समाज की क्षय	11
2. तुम्हारे धर्म की क्षय	18
3. तुम्हारे भगवान की क्षय	22
4. तुम्हारे सदाचार की क्षय	29
5. तुम्हारी जात-पाँत की क्षय	47
6. तुम्हारी जोंकों की क्षय	54

तुम्हारे समाज की क्षय

मनुष्य सामाजिक पशु है। मनुष्य और पशु में अन्तर यही है कि मनुष्य अपने हित और अहित के लिए अपने समाज पर अधिकतर निर्भर रहता है। वस्तुतः पशु-जगत के बड़े-बड़े बलिष्ठ शत्रुओं के रहते तथा समय-समय पर आने वाले हिमयुग-जैसे महान प्राकृतिक उपद्रवों से बचने में उसके दिमाग ने जो सहायता दी है, उसमें मनुष्य का समाज के रूप में संगठन बहुत भारी सहायक हुआ है। समाज ने पहले कमजोर मनुष्य की शक्तियों को सैकड़ों व्यक्तियों की एकता द्वारा बहुत बढ़ा दिया और तभी वह अपने प्राकृतिक और दूसरे शत्रुओं से रक्षा पाने में मदद देते हुए भी अपने भीतर से ऐसे शत्रुओं को पैदा कर दिया है जिन्होंने कि उन प्राकृतिक और पाशविक शत्रुओं से भी अधिक मनुष्य-जीवन को नारकीय बनाने का काम किया है।

समाज का अपने भीतर के व्यक्तियों के प्रति न्याय करना प्रथम कर्तव्य है। न्याय का मतलब यह होना चाहिए कि हर एक व्यक्ति अपने श्रम के फल का उपयोग कर सके। लेकिन आज हम उलटा देखते हैं।

धन वह है जो आदमी के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खाना, कपड़ा, मकान, ये ही चीजें हैं जिन्हें वास्तविक धन कहना चाहिए। वास्तविक धन के उत्पादक वे ही हैं जो इन चीजों को पैदा करते हैं। किसान वास्तविक धन का उत्पादक है, क्योंकि वह मिट्टी को गेहूँ, चावल, कपास के रूप में परिणत करता है। दो घण्टे रात रहते खेतों में पहुँचता है। जेठ की तपती दुपहरी हो या माघ-पूस के सबेरे की हड्डी छेदने वाली सर्दी, वह हल जोतता है, ढेले फोड़ता है, उसका बदन पसीने से तर-बतर हो जाता है, उसके एक-एक हाथ में सात-सात घट्टे पड़ जाते हैं, फावड़ा चलाते-चलाते उसकी साँस टँग जाती है, लेकिन तब भी वह उसी तरह मशक्कत किये जाता है। क्योंकि उसको मालूम है कि धरती माता के यहाँ रिश्वत नहीं चल सकती - वह स्तुति-प्रार्थना के द्वारा अपने हृदय को खोल नहीं सकती। यह अकिंचन मिट्टी सोने के गेहूँ, रूपे के चावल और अंगूरी मोतियों के रूप में तब परिणत होती है जब धरती माता देख लेती है कि किसान ने उनके लिए अपने खून के कितने घड़े पसीने दिये, कितनी बार थकावट के मारे उसका बदन चूर-चूर हो गया और कुदाल अनायास उसके हाथ से गिर गयी।

गेहूँ बना-बनाया तैयार एक-एक जगह दस-बीस मन रक्खा नहीं मिलता, वह

पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस दानों के रूप में और वह भी अलग-अलग बालियों में छिपा सारे खेत में बिखरा रहता है। किसान उन्हें जमा करता है, बालियों से अलग करता है। दस-दस, बीस-बीस मन की राशि को एक जगह देखकर एक बार उसका हृदय पुलकित हो उठता है। महीनों की भूख से अधमरे उसके बच्चे चाहभरी निगाह से उस राशि को देखते हैं। वे समझते हैं कि दुख की अँधेरी रात कटने वाली है और सुख का सबेरा सामने आ रहा है। उनको क्या मालूम कि उनकी यह राशि – जिसे उनके माता-पिता ने इतने कष्ट के साथ पैदा किया – उनके खाने के लिए नहीं है। इसके खाने के अधिकारी सबसे पहले वे स्त्री-पुरुष हैं जिनके हाथों में एक भी घट्टा नहीं है, जिनके हाथ गुलाब जैसे लाल और मक्खन जैसे कोमल हैं; जिनकी जेठ की दुपहरियाँ खस की टट्टियों, बिजली के पंखों या शिमला और नैनीताल में बीतती हैं। जाड़ा जिनके लिए सर्दी की तकलीफ नहीं लाता, बल्कि मुलायम ऊन और कीमती पोस्तीन से सारे बदन को ढँके इन लोगों के लिए आनन्द के सभी रास्ते खोल देता है। निठल्ले और निकम्मे ये बड़े आदमी – जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी-बड़ी तनख्वाहों वाले नौकर, पुरोहित और दूसरी सभी प्रकार की जोंकें – किसान के कसाले की इस कमाई के भोजन का सबसे पहले हक रखती हैं।

मजदूर भोंपू लगते ही आँख मलते हुए कारखाने की ओर दौड़ता है। अभी कुछ दिनों पहले तक तो काम के घण्टों का भी कोई निर्बन्ध न था और अब भी अधिक मजदूरों वाले कारखानों पर ही वह नियम लागू है। वहाँ तीन आने और चार आने रोज पर वह खटता है। इसी तीन-चार आने में उसे बीबी, तीन-चार बच्चों और बूढ़े माँ-बाप की भी फिक्र करनी है। एक दिन भी निश्चिन्त हो पेट-भर खाना उसके लिए हराम है और उस पर से यदि वह बीमार पड़ गया तो नौकरी से जवाब। यदि बूढ़ा या अंग-भंग हो गया तो आसमान के नीचे उसको और उसके बाल-बच्चों को भीख देने वाला भी कोई नहीं। यही नहीं, कल तक कारखाना चौबीसों घण्टे चल रहा था, आज मालिक के पास खबर आती है – चीजों का दाम गिर गया, अब उन्हें लागत दाम पर भी बाजार में कोई खरीदने वाला नहीं है। कारखाने में ताला लगा दिया जाता है। मजदूर, उसके बाल-बच्चे दाने-दाने के लिए बिलखने लगते हैं। जब उसे काम मिला था और मजदूरी मिलती थी तब भी उसकी जिन्दगी नरक से बेहतर न थी और बेकारी तो जिन्दा ही मौत। ऐसी तकलीफों को सहते मजदूर तैयार करता है बढ़िया से बढ़िया कपड़े, चीनी, मिठाइयाँ और हजारों तरह की सुख-विलास की सामग्रियाँ। वह अपने हाथों से खड़ा करता है बड़े-बड़े महल, बँगले, बाग, ठण्डी सड़कें। लेकिन खुद उसके लिए क्या मिलता है? उसकी झोपड़ी शायद ही बरसात में साबित रहती हो। उसके बदन के लिए चीथड़े भी ढँकने के लिए नहीं मिलते। कितनी ही उसकी अपनी बनायी चीजें उसके लिए स्वप्न की-सी मालूम होती हैं और मजदूर की हड्डियों, पसीने और चिन्ता से बनी इन चीजों का उपभोग कौन

करता है? उनके खून के गारे से उठी अट्टालिकाओं में विहार कौन करता है? वही बड़ी-बड़ी जोंकें - जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी-बड़ी तनख्वाहों वाले नौकर, पुरोहित।

किसान और मजदूर जिसके लिए अपनी जवानी धूल में मिलाते हैं, अपनी नींद हराम करते हैं, अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश करते हैं, वह उन्हें भूखा-नंगा रख करके ही सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि पग-पग पर उन्हें अपमानित करना अपना कर्तव्य समझता है। किसान और मजदूर गरीब क्यों हैं? क्योंकि उन्होंने अपनी कमाई परिवार और बाल-बच्चों को भूखा रखकर इन जोंकों को खुशी-खुशी दे दी है। उन्हीं के खून से मोटी हुई ये तोंदें गरीबी के लिए उन्हें लांछित करती हैं। उनकी भाषा में इन गरीबों के लिए अलग शब्द हैं। 'आप' की तो बात ही क्या, 'तुम' भी उनके लिए नहीं इस्तेमाल किया जा सकता। 'तू', 'रे', 'अबे' से ही उन्हें सम्बोधित किया जा रहा है। बुरी से बुरी गालियों को उनके लिए इस्तेमाल करना अमीरी की शान है। उनके ही कारण गरीबी का शिकार मजदूर और किसान उनके सामने चारपाई पर नहीं बैठ सकता, खड़ाऊँ नहीं पहन सकता, छाता नहीं लगा सकता। गाँव के किसान की इज्जत और जानोमाल जमींदार के हाथ में है। वह जैसे चाहता है, उसे नाक रगड़ने को मजबूर करता है।

यह तो हुई वास्तविक धन के उत्पादकों की अवस्था और जोंकें? मजदूरों और किसानों की कमाई उनके लिए अर्पित है। वे इसके सोचने की परवाह नहीं करते कि उनकी लाखों की तहसील और मुनाफे का रुपया किस तरह प्राप्त किया गया। क्या वे कभी यह सोचने की तकलीफ करते हैं कि उस एक-एक रुपये को जमा करने के लिए किसान ने अपने बच्चों को कितनी बार भूखा रक्खा? कितनी माताओं ने अपने को नंगा रक्खा? कितने बीमारों ने दवा और पथ्य से महरूम रहकर अपने प्राण छोड़े? यदि उनको ऐसा खयाल होता तो वे कभी दो हजार की फोर्ड कार की जगह तीस हजार का रोल्स-राइस खरीदना पसन्द न करते, महीने में हजार-हजार रुपये मोटर के तेल में न फूँक डालते। हाकिमों की दावतों और विलास के जलसों में लाखों का वारा-न्यारा न करते।

यह सब अन्धेर होते हुए भी किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। समाज के पंच कह उठते हैं, अमीर-गरीब सदा से चले आये हैं; अगर सभी बराबर कर दिये जायें तो कोई काम करना पसन्द नहीं करेगा; दुनिया के चलाने के लिए अमीर-गरीब का रहना जरूरी है। समाज की बेड़ियाँ जेलखाने की बेड़ियों से भी सख्त हैं। उन्हें आँखों से देखा नहीं जा सकता, लेकिन जहाँ समाज कानून के खिलाफ - चाहे वह कानून सरासर अन्याय पर ही अवलम्बित क्यों न हो - कोई बात हुई कि समाज हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। कुएँ में पानी है, जगत पर लोटा-डोरी रखी हुई है, एक तरफ मन्दिर के आँगन में भक्तिभाव से झूम-झूमकर लोग रामायण पढ़ रहे हैं -

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि के भजै सो हरि के होई।" गीता हो रही है - "विद्या विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः॥" (विद्या और शील-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल सब में पण्डित लोग समदर्शी होते हैं) महात्मा और पण्डित लोग गद्‌गद् होकर अर्थ कर रहे हैं - "जो है सब भगवान की देन है, **सियाराम मय सब जग जानी। करहु प्रणाम जोरि जुग पानी।** चराचर जगत सब भगवान के रूप हैं, जो है सो उसमें कोई भेद नहीं।" मालूम होता है, चारों ओर समदर्शिता, विश्व-बन्धुत्व और प्रेम का महासमुद्र लहरें मार रहा है। उसी समय जेठ की दुपहरी में प्यास का मारा चमार आ जाता है, उसका कदम कुएँ की ओर बढ़ता है, भक्तों में से कोई उसकी जात पहचानता है, कानाफूसी होती है महात्मा और भक्तिरस में गदगद सभी श्रोताओं की त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं और सभी मानो जीते जी खा जाने के लिए उस निरपराध व्यक्ति की ओर दौड़ पड़ते हैं? उसका कसूर क्या? क्या कुएँ से पानी पीना अपराध है? क्या समदर्शिता और विश्व-बन्धुत्व के वायुमण्डल में कुएँ से पानी निकालकर पी लेना महापाप है? और यह मण्डली कुछ ही मिनटों पहले जिस राग को अलाप रही थी, उसके रहते क्या ऐसा करना उचित था? उन व्यक्तियों में से एक-एक से अलग-अलग पूछिए - "तुम्हारे वचन और कर्म में, मन्तव्य और कर्तव्य में इतना अन्तर क्यों?" घूम-फिरकर आप इसी नतीजे पर पहुँचेंगे कि समाज उनसे वैसा ही कराना चाहता है।

किसी ऊँची जात के माता-पिता की एक छोटी-सी लड़की है। समाज ने मजबूर किया है कि उसकी शादी आठ-दस बरस की उम्र तक हो जाये। ग्यारहवें बरस में वह लड़की विधवा हो जाती है। समाज कहता है, उसकी शादी नहीं हो सकती, अब जिन्दगी भर उसे ब्रह्मचर्य से रहना और इन्द्रिय-संयम करना पड़ेगा। कैसा ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-संयम? - जिसके पालन में विश्वामित्र और पराशर, ऋष्यशृंग और व्यास जैसे बड़े-बड़े ऋषि बिलकुल असमर्थ रहे। आज भी उसी विधवा लड़की का पचास साल का बूढ़ा बाप एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से शादी करने को तैयार है। उसके पच्चीस वर्ष के भाई की स्त्री को मरे महीने से ज्यादा भी नहीं हुआ, लेकिन दूसरी शादी की बातचीत तय हो रही है। क्या समाज की अक्ल मारी गयी है? क्या उसकी आँखों पर पर्दा पड़ गया है? क्या उसे मालूम नहीं है कि इस अबोध बालिका से जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य और संयम की आशा रखना दुराशा मात्र है? क्या अपने पास-पड़ोस में प्रति वर्ष एक-दो गर्भ गिरते उसने नहीं देखे? इतने पर भी क्या वह नहीं समझ सकता कि यदि उस बालिका को खुलकर पुरुष-समागम का मौका नहीं दिया गया, तो वह छिपकर वैसा करेगी? खुलकर करने पर शायद वह रिश्ते और जाति का भी खयाल करती; लेकिन छिपकर करने पर तो वह सबसे नजदीक के सम्बन्धी के साथ भी नाता जोड़ सकती है। किसी जाति का पुरुष, जो उसे सुलभ है, उसके प्रेम का

पात्र हो सकता है। इस गुप्त-प्रणय का परिणाम वह जानती है, उसके लिए मृत्युदण्ड से कम नहीं है। यदि गर्भ न गिराया जा सका, तो उसे सबसे हल्की सजा यही मिलेगी कि उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, खून के अत्यन्त नजदीकी सम्बन्धी उसे किसी अनजान शहर में, किसी सुनसान जगह में, छोड़ आयें जहाँ उसे जीवन भर वेश्यावृत्ति या उसी तरह का कोई काम करना होगा। समाज के कारण उसके भाई-बन्धु उसे जहर भी खिला सकते हैं, हथियार से भी मार सकते हैं। यदि गुप्त सम्बन्ध को छिपाया जा सका, तो गर्भ तो जरूर ही एक-दो गिराये जायेंगे। जो समाज इन सब बातों को अपनी आँखों से देखता है और इसके परिणामों को भी भली-भाँति समझता है, वह कैसे इतनी असम्भव शर्तें अभागे व्यक्तियों के सामने पेश करता है? क्या इससे उसकी हृदयहीनता स्पष्ट नहीं होती है? हर पीढ़ी के करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को इस प्रकार कलुषित, पीड़ित और कण्टकाकीर्ण बनाकर क्या वह अपनी नर-पिशाचता का परिचय नहीं देता? ऐसे समाज के लिए हमारे दिल में क्या इज्जत हो सकती है, क्या सहानुभूति हो सकती है? बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान-विज्ञान का तमाशा किया जाता है और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म! धिक्कार है ऐसे समाज को!! सर्वनाश हो ऐसे समाज का!!!

जिस समाज ने प्रतिभाओं को जीते-जी दफनाना कर्तव्य समझा है और गदहों के सामने अंगूर बिखेरने में जिसे आनन्द आता है, क्या ऐसे समाज के अस्तित्व को हमें पलभर भी बर्दाश्त करना चाहिए? एक गरीब माता-पिता हैं। उनको खुद न अपने खाने-पीने का ठिकाना है, न पहनने-ओढ़ने का। उनके घर में एक असाधारण प्रतिभाशाली बालक पैदा होता है। लड़कपन से ही उसे किसी धनी के बच्चे को खेलाना पड़ता है, भेड़-बकरियाँ चराकर पेट पालने के लिए मजबूर होना पड़ता है। माँ-बाप जानते तक नहीं कि लड़के को पढ़ाना-लिखाना भी उनका कर्तव्य है। यदि वे जानते भी हैं, तो न उसके पास फीस देने के लिए पैसा है, न किताब के लिए दाम। लड़का बड़ा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है और साथ ही अपने साथ प्रतिभा को लिए जाता है जिसके द्वारा वह देश को एक चाणक्य, एक कालीदास, एक आर्यभट्ट, एक रवीन्द्र, एक रमन दे सकता था। मैंने गाँव के एक अभिनेता को देखा है। यदि वह किसी ऐसे देश में पैदा हुआ होता जहाँ प्रतिभाओं के आगे बढ़ने के सारे रास्ते खुले हैं, तो वहाँ वह प्रथम श्रेणी का जगद्विख्यात अभिनेता होता। लेकिन, आज साठ बरस की अवस्था में इस अशिक्षित व्यक्ति की वह महान प्रतिभा ग्रामीण स्त्री-पुरुष-जीवन के कुछ सजीव चित्रण द्वारा अपने परिचितों का कुछ मनोरंजन मात्र कर सकती है। मैंने ऐसे स्वाभाविक कवि देखे हैं जिन्हें अक्षर का कोई भी ज्ञान नहीं। जिस भाषा को बोलते हैं, उनमें कोई लिखित साहित्य नहीं, कोई आचार्य-परम्परा नहीं, छन्द और अलंकार के परिचय का कोई साधन नहीं, तब भी अपनी भाषा में वे बहुत ही भावपूर्ण, रसपूर्ण कविता कर सकते हैं। शिक्षित जन उनकी कविता को, गँवारू कहकर निरादर

करते हैं और इसके कारण वे खुद भी उसे वैसा ही समझते हैं। कवित्व के लिए बाहर से न उन्हें कोई प्रेरणा मिलती है, न प्रोत्साहन, सिर्फ अन्त:प्रेरणा से मजबूर होकर वे कभी-कभी कुछ गा लेते हैं। मैं गाँव के एक लड़के के बारे में जानता हूँ। उसकी माँ विधवा है। नाममात्र का थोड़ा-सा खेत पुत्र और माता की जीविका का साधन है। लड़का गाँव की पाठशाला में पढ़ने बैठा। असाधारण मेधावी, गणित में विशेष निपुण। प्राइमरी-स्कूल में उसे छात्रवृत्ति मिली जिसकी सहायता से उसने मिडिल पास किया। वहाँ भी उसने छात्रवृत्ति पायी। यद्यपि पर्याप्त न थी, तो भी किसी तरह वह अपनी पढ़ाई को जारी रख सकता था। मैट्रिक में युक्त प्रान्त से उत्तीर्ण होने वाले कई हजार छात्रों में उसका नम्बर दूसरा या तीसरा था। किन्तु जो एक या दो छात्र उसकी अपेक्षा अधिक नम्बर से पास हुए थे, वे धनियों के लाड़ले थे। उनके ऊपर दो-दो, तीन-तीन अध्यापक घर में अलग रक्खे गये थे। उन्हें हमारे उक्त तरुण की तरह खाने-पीने की चिन्ता न थी। अबकी बार फिर उसे छात्रवृत्ति मिली। वह कालेज में पढ़ने लगा। फिजिक्स, केमिस्ट्री और गणित उसके विषय थे। छात्रवृत्ति पर्याप्त न थी। इधर स्वास्थ्य भी इतना अच्छा न रहा। उस पर से एक देहाती जगह से आकर तीव्र विद्यार्थियों के लिए मशहूर एक विश्वविद्यालय में उसने नाम लिखाया था। यहाँ छात्रवृत्तियाँ कम थीं। संयोग से एक ही छात्रवृत्ति के लिए तीन विद्यार्थियों के नम्बर बराबर आ गये। छात्रवृत्ति किसको मिलनी चाहिए, इसका निर्णय करते वक्त विश्वविद्यालय ने ऐसे दो विषय ले लिए, जिनमें एक और ही छात्र - जो कि एक धनाढ्य की सन्तान था - के एक-दो नम्बर अधिक हो गये। किसी ने इसकी परवाह न की कि उस तरुण की प्रतिभा - जो घोर दरिद्रता में जन्म लेकर भी कितनी कठिनाइयों को पारकर यहाँ तक पहुँची थी - का भविष्य क्या होगा? मुझे उस तरुण से साल भर बाद मिलने का मौका मिला। मैंने देखा - उसका चेहरा थाइसिस के रोगी जैसा हो गया है। बदन बहुत दुबला-पतला। मैंने कारण पूछा। तरुण ने बहाना बना लिया। उसके चले जाने पर दूसरे साथी ने बतलाया - "उसे इस साल छात्रवृत्ति नहीं मिली। बहुत कहने-सुनने पर फीस माफ हो गयी। खाने-पीने के लिए उसने ट्यूशन पाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन न मिला। एक-दो दोस्त अपने साथ रखने का आग्रह करते थे, लेकिन इसे वह अपने आत्मसम्मान के खिलाफ समझता था।" दूसरे दिन अपनी जानकारी को जतलाते हुए मैंने जब तरुण से पूछा तो उसने उत्तर दिया - "हाँ ठीक है। मैंने ट्यूशन के लिए बहुत कोशिश की, कालेज के घण्टों को समाप्त करके मैं घण्टों इसी फेर में घूमता रहा। लेकिन कहीं कुछ होते-हवाते न देख मैंने उसे अब छोड़ दिया है।" जिस वक्त मुझे उस प्रतिभाशाली तरुण की इस उपेक्षा को देखने का मौका मिला और यह भी सुना कि वह सिर्फ एक बार थोड़ी-सी खिचड़ी खाकर गुजारा करता आ रहा है, तो सच बताऊँ मेरी आँखों में खून उतर आया। मुझे खयाल आता था - ऐसे समाज को जीने देना पाप है। इस पाखण्डी, धूर्त, बेईमान, जालिम, नृशंस समाज

को पेट्रोल डालकर जला देना चाहिए।

एक तरफ प्रतिभाओं की इस तरह अवहेलना और दूसरी तरफ धनियों के गदहे लड़कों पर आधे दर्जन ट्यूटर लगा-लगाकर ठोक-पीटकर आगे बढ़ाना। मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जिसके दिमाग में सोलहों आने गोबर भरा हुआ था, लेकिन वह एक करोड़पति के घर पैदा हुआ था। उसके लिए मैट्रिक पास करना भी असम्भव था। लेकिन आज वह एम.ए. ही नहीं है, डाक्टर है। उसके नाम से दर्जनों किताबें छपी हैं। दूर की दुनिया उसे बड़ा स्कालर समझती है। एक बार "उसकी" एक किताब को एक सज्जन पढ़कर बोल उठे - "मैंने इनकी अमुक किताब पढ़ी थी। उसकी अंग्रेजी बड़ी सुन्दर थी; और इस किताब की भाषा तो बड़ी रद्दी है?" उनको क्या मालूम था कि उस किताब का लेखक दूसरा था और इस किताब का दूसरा।

प्रतिभाओं के गले पर इस प्रकार छूरी चलते देखकर जो समाज खिन्न नहीं होता, उस समाज की "क्षय हो" इसको छोड़ और क्या कहा जा सकता है।

तुम्हारे धर्म की क्षय

वैसे तो धर्मों में आपस में मतभेद है। एक पूरब मुँह करके पूजा करने का विधान करता है, तो दूसरा पश्चिम की ओर। एक सिर पर कुछ बाल बढ़ाना चाहता है, तो दूसरा दाढ़ी। एक मूँछ कतरने के लिए कहता है, तो दूसरा मूँछ रखने के लिए। एक जानवर का गला रेतने के लिए कहता है, तो दूसरा एक हाथ से गर्दन साफ करने को। एक कुर्ते का गला दाहिनी तरफ रखता है, तो दूसरा बाईं तरफ। एक जूठ-मीठ का कोई विचार नहीं रखता, तो दूसरे के यहाँ जाति के भी बहुत-से चूल्हे हैं। एक खुदा के सिवा दूसरे का नाम भी दुनिया में रहने नहीं देना चाहता, तो दूसरे के देवताओं की संख्या नहीं। एक गाय की रक्षा के लिए जान देने को कहता है, तो दूसरा उसकी कुर्बानी से बड़ा सबाब समझता है।

इसी तरह दुनिया के सभी मजहबों में भारी मतभेद है। ये मतभेद सिर्फ विचारों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि पिछले दो हजार वर्षों का इतिहास बतला रहा है कि इन मतभेदों के कारण मजहबों ने एक-दूसरे के ऊपर जुल्म के कितने पहाड़ ढाये। यूनान और रोम के अमर कलाकारों की कृतियों का आज अभाव क्यों दीखता है? इसलिए कि वहाँ एक मजहब आया जो ऐसी मूर्तियों के अस्तित्व को अपने लिए खतरे की चीज समझता था। ईरान की जातीय कला, साहित्य और संस्कृति को नामशेष-सा क्यों हो जाना पड़ा? - क्योंकि, उसे एक ऐसे मजहब से पाला पड़ा जो इन्सानियत का नाम भी धरती से मिटा देने पर तुला हुआ था। मेक्सिको और पेरू, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान, मिस्र और जावा - जहाँ भी देखिये, मजहबों ने अपने को कला, साहित्य, संस्कृति का दुश्मन साबित किया। और खून-खराबा? इसके लिए तो पूछिये मत। अपने-अपने खुदा और भगवान के नाम पर, अपनी-अपनी किताबों और पाखण्डों के नाम पर मनुष्य के खून को उन्होंने पानी से भी सस्ता कर दिखलाया। यदि पुराने यूनानी धर्म के नाम पर निरपराध ईसाई बच्चे बूढ़ों, स्त्री-पुरुषों को शेरों से फड़वाना, तलवार के घाट उतारना बड़े पुण्य का काम समझते थे, तो पीछे अधिकार हाथ आने पर ईसाई भी क्या उनसे पीछे रहे? ईसामसीह के नाम पर उन्होंने खुलकर तलवार का इस्तेमाल किया। जर्मनी में इन्सानियत के भीतर लोगों को लाने के लिए कत्लेआम-सा मचा दिया गया। पुराने जर्मन ओक वृक्ष की पूजा करते थे। कहीं ऐसा न हो कि ये ओक ही उन्हें फिर पथभ्रष्ट कर दें, इसके लिए बस्तियों के आसपास एक भी ओक को रहने न दिया गया। पोप और पेत्रयार्क, इंजील और ईसा के

नाम पर प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विचार-स्वातन्त्र्य को आग और लोहे के जरिये से दबाते रहे। जरा से विचार-भेद के लिए कितनों को चर्खी से दबाया गया - कितनों को जीते जी आग में जलाया गया। हिन्दुस्तान की भूमि ऐसी धार्मिक मतान्धता का कम शिकार नहीं रही है। इस्लाम के आने से पहले भी क्या मजहब ने मन्त्र के बोलने और सुनने वालों के मुँह और कानों में पिघले राँगे और लाख को नहीं भरा? शंकराचार्य ऐसे आदमी - जो कि सारी शक्ति लगा गला फाड़-फाड़कर यही चिल्लाते रहे थे कि सभी ब्रह्म हैं, ब्रह्म से भिन्न सभी चीजें झूठी हैं तथा रामानुज और दूसरों के भी दर्शन जबानी जमा-खर्च से आगे नहीं बढ़े, बल्कि सारी शक्ति लगाकर शूद्रों और दलितों को नीचे दबा रखने में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रक्खी और इस्लाम के आने के बाद तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम के खूँरेज झगड़े आज तक चल रहे हैं। उन्होंने तो हमारे देश को अब तक नरक बना रखा है। कहने के लिए इस्लाम शक्ति और विश्व-बन्धुत्व का धर्म कहलाता है; हिन्दू-धर्म ब्रह्मज्ञान और सहिष्णुता का धर्म बतलाया जाता है; किन्तु क्या इन दोनों धर्मों ने अपने इस दावे को कार्यरूप में परिणत करके दिखलाया? हिन्दू मुसलमानों पर दोष लगाते हैं कि ये बेगुनाहों का खून करते हैं; हमारे मन्दिरों और पवित्र तीर्थों को भ्रष्ट करते हैं; हमारी स्त्रियों को भगा ले जाते हैं। लेकिन, झगड़े में क्या हिन्दू बेगुनाहों का खून करने से बाज आते हैं। चाहे आप कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े को ले लीजिये या बनारस के, इलाहाबाद के या आगरे के; सब जगह देखेंगे कि हिन्दुओं और मुसलमानों के छुरे और लाठियों के शिकार हुए हैं - निरपराध, अजनबी स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे। गाँव या दूसरे मुहल्ले का कोई अभागा आदमी अनजाने उस रास्ते आ गुजरा और कोई पीछे से छुरा भोंक कर चम्पत हो गया। सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इस धार्मिक झगड़ों को देखिये, तो आपको मालूम होगा कि यहाँ मनुष्यता पनाह माँग रही है। निहत्थे बूढ़े और बूढ़ियाँ ही नहीं, छोटे-छोटे बच्चे तक मार डाले जाते हैं। अपने धर्म के दुश्मनों को जलती आग में फेंकने की बात अब भी देखी जाती है।

एक देश और एक खून मनुष्य को भाई-भाई बनाते हैं। खून का नाता तोड़ना अस्वाभाविक है, लेकिन हम हिन्दुस्तान में क्या देखते हैं? हिन्दुओं की सभी जातियों में, चाहे आरम्भ में कुछ भी क्यों न रहा हो अब तो एक ही खून दौड़ रहा है; क्या शकल देखकर किसी के बारे में आप बतला सकते हैं कि यह ब्राह्मण है और यह शूद्र। कोयले से भी काले ब्राह्मण आपको लाखों की तादात में मिलेंगे। और शूद्रों में भी गेहुएँ रंग वालों का अभाव नहीं है। पास-पास में रहने वाले स्त्री-पुरुषों के यौन-सम्बन्ध, जाति की ओर से हजार रुकावट होने पर भी, हम आये दिन देखते हैं। कितने ही धनी खानदानों, राजवंशों के बारे में तो लोग साफ कहते हैं कि दास का लड़का राजा और दासी का लड़का राजपुत्र। इतना होने पर भी हिन्दू-धर्म लोगों को हजारों जातियों में बाँटे हुए हैं। कितने ही हिन्दू, हिन्दू के नाम पर जातीय एकता स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु, वह हिन्दू जातीयता है कहाँ? हिन्दू जाति तो एक काल्पनिक शब्द है। वस्तुतः

वहाँ हैं ब्राह्मण - ब्राह्मण भी नहीं, शाकद्वीपी, सनाढ्य, जुझौतिया - राजपूत, खत्री, भूमिहार, कायस्थ, चमार आदि-आदि...। एक राजपूत का खाना-पीना, ब्याह-श्राद्ध अपनी जाति तक सीमित रहता है। उसकी सामाजिक दुनिया अपनी जाति तक महमूद है। इसीलिए जब एक राजपूत बड़े पद पर पहुँचता है, तो नौकरी दिलाने, सिफारिश करने या दूसरे तौर से सबसे पहले अपनी जाति के आदमी को फायदा पहुँचाना चाहता है। यह स्वाभाविक है। जब कि चौबीसों घण्टे मरने-जीने सबमें सम्बन्ध रखने वाले अपने बिरादरी के लोग हैं, तो किसी की दृष्टि दूर तक कैसे जायेगी?

कहने के लिए तो हिन्दुओं पर ताना कसते हुए इस्लाम कहता है कि हमने जात-पाँत के बन्धनों को तोड़ दिया। इस्लाम में आते ही सब भाई-भाई हो जाते हैं। लेकिन क्या यह बात सच है? यदि ऐसा होता तो आज मोमिन (जुलाहा), अप्सार (धुनिया), राइन (कुँजड़ा) आदि का सवाल न उठता। अर्जल और अशरफ का शब्द किसी के मुँह पर न आता। सैयद-शेख, मलिक-पठान, उसी तरह का खयाल अपने से छोटी जातियों से रखते हैं, जैसा कि हिन्दुओं के बड़ी जात वाले। खाने के बारे में छूतछात कम है और वह तो अब हिन्दुओं में भी कम होता जा रहा है। लेकिन सवाल तो है - सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र में इस्लाम की बड़ी जातों ने छोटी जातों को क्या आगे बढ़ने का कभी मौका दिया? धार्मिक नेता हों, तो बड़ी-बड़ी जातों से शाही दरबार और सरकारी नौकरियाँ सभी जगहें बड़ी जातों के लिए सुरक्षित रहीं। जमींदार, ताल्लुकेदार, नवाब सभी बड़ी जातों के हैं। हिन्दुस्तानियों में से चार-पाँच करोड़ आदमियों ने हिन्दुओं के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अत्याचारों से त्राण पाने के लिए इस्लाम की शरण ली। लेकिन, इस्लाम की बड़ी जातों ने क्या उन्हें वहाँ पनपने दिया? सात सौ बरस बाद भी आज गाँव का मोमिन जमींदारों और बड़ी जातों के जुल्म का वैसा ही शिकार है, जैसा कि उसका पड़ोसी कानू-कुर्मी। हिन्दुओं से झगड़कर अंग्रेजों की खुशामद करके कौन्सिलों की सीटों, सरकारी नौकरियों में अपने लिए संख्या सुरक्षित करायी जाती है। लेकिन जब उस संख्या को अपने भीतर वितरण करने का अवसर आता है, तब उनमें से प्रायः सभी को बड़ी जाति वाले सैयद और शेख अपने हाथ में ले लेते हैं। साठ-साठ, सत्तर-सत्तर फीसदी संख्या रखने वाले मोमिन और अन्सार मुँह ताकते रह जाते हैं। बहाना किया जाता है कि उनमें उतनी शिक्षा नहीं। लेकिन सात सौ और हजार बरस बाद भी यदि वे शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं, तो इसका दोष किसके ऊपर है? उन्हें कब शिक्षित होने का अवसर दिया गया? जब पढ़ाने का अवसर आया, छात्रवृत्ति देने का मौका आया, तब तो ध्यान अपने भाई-बन्धुओं की तरफ चला गया। मोमिन और अन्सार, बावर्ची और चपरासी, खिदमतगार और हुक्काबरदार के काम के लिए बने हैं। उनमें से कोई यदि शिक्षित हो भी जाता है, तो उसकी सिफारिश के लिए अपनी जाति में तो वैसा प्रभावशाली व्यक्ति है नहीं; और, बाहर वाले अपने भाई-बन्धु को छोड़कर उन पर तरजीह क्यों देने लगे? नौकरियों और पदों के लिए इतनी दौड़धूप, इतनी जद्दोजहद सिर्फ खिदमते-कौम और देश सेवा के

लिए नहीं है, यह है रुपयों के लिए, इज्जत और आराम की जिन्दगी बसर करने के लिए।

हिन्दू और मुसलमान फरक-फरक धर्म रखने के कारण क्या उनकी अलग जाति हो सकती है? जिनकी नसों में उन्हीं पूर्वजों का खून बह रहा है जो इसी देश में पैदा हुए और पले, फिर दाढ़ी और चुटिया, पूरब और पश्चिम की नमाज क्या उन्हें अलग कौम साबित कर सकती है? क्या खून पानी से गाढ़ा नहीं होता? फिर हिन्दू और मुसलमान के फरक से बनी इन अलग-अलग जातियों को हिन्दुस्तान से बाहर कौन स्वीकार करता है? जापान में जाइये या जर्मनी, ईरान जाइये या तुर्की सभी जगह हमें हिन्दी और 'इण्डियन' कहकर पुकारा जाता है। जो धर्मभाई को बेगाना बनाता है, ऐसे धर्म को धिक्कार! जो मजहब अपने नाम पर भाई का खून करने के लिए प्रेरित करता है, उस मजहब पर लानत! जब आदमी चुटिया काट दाढ़ी बढ़ाने भर से मुसलमान और दाढ़ी मुड़ा चुटिया रखने मात्र से हिन्दू मालूम होने लगता है, तो इसका मतलब साफ है कि यह भेद सिर्फ बाहरी और बनावटी है। एक चीनी चाहे बौद्ध हो या मुसलमान, ईसाई हो या कनफूसी, लेकिन उसकी जाति चीनी रहती है; एक जापानी चाहे बौद्ध हो या शिन्तो-धर्मी, लेकिन उसकी जाति जापानी रहती है; एक ईरानी चाहे वह मुसलमान हो या जरतुस्त, किन्तु वह अपने लिए ईरानी छोड़ दूसरा नाम स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। तो हम-हिन्दियों के मजहब को टुकड़े-टुकड़े में बाँटने को क्यों तैयार हैं और इस नाजायज हरकतों को हम क्यों बर्दाश्त करें?

धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है; और, इसलिए अब मजहबों के मेलमिलाप की बातें कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? "मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना" - इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना अगर मज़हब बैर नहीं सिखाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आज तक हमारा मुल्क पामाल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों के खून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खाने वालों को लड़ा रहा है। असल बात यह है - "मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।" हिन्दुस्तानियों की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर। कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसका, मौत को छोड़कर इलाज नहीं।

एक तरफ तो वे मजहब एक-दूसरे के इतने जबर्दस्त खून के प्यासे हैं। उनमें से हर एक एक-दूसरे के खिलाफ शिक्षा देता है। कपड़े-लत्ते, खाने-पीने, बोली-बानी, रीति-रिवाज में हर एक एक-दूसरे से उल्टा रास्ता लेता है। लेकिन, जहाँ गरीबों को चूसने और धनियों की स्वार्थ-रक्षा का प्रश्न आ जाता है; तो दोनों बोलते हैं। गदहा-गाँव के महाराज बेवकूफ बख्श सिंह सात पुश्त से पहले दर्जे के बेवकूफ चले आते हैं। आज उनके पास पचास लाख सालाना आमदनी की जमींदारी है जिसको प्राप्त करने

में न उन्होंने एक धेला अकल खर्च की और न अपनी बुद्धि के बल पर उसे छै दिन चला ही सकते हैं। न वे अपनी मेहनत से धरती से एक छटाँक चावल पैदा कर सकते हैं, न एक कंकड़ी गुड़। महाराज बेवकूफ बख्श सिंह को यदि चावल, गेहूँ, घी, लकड़ी के ढेर के साथ एक जंगल में अकेले छोड़ दिया जाये, तो भी उनमें न इतनी बुद्धि है और न उन्हें काम का ढंग मालूम है कि अपना पेट भी पाल सकें; सात दिन में बिल्ला-बिल्ला कर जरूर वे वहीं मर जायेंगे। लेकिन आज गदहा गाँव में महाराज दस हजार रुपया महीना तो मोटर के तेल में फूँक डालते हैं। बीस-बीस हजार रुपये जोड़े कुत्ते उनके पास हैं। दो लाख रुपये लगाकर उनके लिए महल बना हुआ है। उन पर अलग डाक्टर और नौकर हैं। गर्मियों में उनके घरों में बरफ के टुकड़े और बिजली के पंखे लगते हैं। महाराज के भोजन-छाजन की तो बात ही क्या? उनके नौकरों के लिए नौकर भी घी-दूध में नहाते हैं, और जिस रुपये को इस प्रकार पानी की तरह बहाया जाता है, वह आता कहाँ से है? उसके पैदा करने वाले कैसी जिन्दगी बिताते हैं? - वे दाने-दाने को मुहताज हैं। उनके लड़कों को महाराज बेवकूफ बख्श के कुत्तों का जूठा भी यदि मिल जाये, तो वे अपने को धन्य समझें।

लेकिन, यदि किसी धर्मानुयायी से पूछा जाये, कि ऐसे बेवकूफ आदमी को बिना हाथ-पैर हिलाये दूसरे की कसाले की कमाई को पागल की तरह फेंकने का क्या अधिकार है तो पण्डित जी कहेंगे - "अरे वे तो पूर्व की कमाई खा रहे हैं। भगवान की ओर से वे बड़े बनाये गये हैं। शास्त्र-वेद कहते हैं कि बड़े-छोटे के बनाने वाले भगवान हैं। गरीब दाने-दाने को मारा-मारा फिरता है, यह भगवान की ओर से उसको दण्ड मिला है।" यदि किसी मौलवी या पादरी से पूछिये तो जवाब मिलेगा - "क्या तुम काफिर हो, नास्तिक तो नहीं हो? अमीर-गरीब दुनिया का कारबार चलाने के लिए खुदा ने बनाये हैं। राजी-ब-रजा खुदा की मर्जी में इन्सान का दखल देने का क्या हक? गरीबी को न्यामत समझो। उसकी बन्दगी और फरमाबरदारी बजा लाओ, कयामत में तुम्हें इसकी मजदूरी मिलेगी।" पूछा जाय - जब बिना मेहनत ही के महाराज बेवकूफ बख्श सिंह धरती पर ही स्वर्ग आनन्द भोग रहे हैं तो ऐसे 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' के दरबार में बन्दगी और फरमाबरदारी से कुछ होने-हवाने की क्या उम्मीद?

उल्लू शहर के नवाब नामाकूल खाँ भी बड़े पुराने रईस हैं। उनकी भी जमींदारी है और ऐशो-आराम में बेवकूफ बख्श सिंह से कम नहीं हैं। उनके पाखाने की दीवारों में अतर चुपड़ा जाता है और गुलाब-जल से उसे धोया जाता है। सुन्दरियों और हुस्न की परियों को फँसा लाने के लिए उनके सैंकड़ों आदमी देश-विदेशों में घूमा करते हैं। यह परियाँ एक ही दीदार में उनके लिए बासी हो जाती हैं। पचासों हकीम, डाक्टर और वैद्य उनके लिए जौहर, कुश्ता और रसायन तैयार करते रहते हैं। दो-दो साल की पुरानी शराबें पेरिस और लन्दन के तहखानों से बड़ी-बड़ी कीमत पर मँगाकर रक्खी जाती हैं। नवाब बहादुर का तलवा इतना लाल और मुलायम है जितनी इन्द्र की परियों

की जीभ भी न होगी। इनकी पाशविक काम-वासना की तृप्ति में बाधा डालने के लिए कितने ही पति तलवार के घाट उतारे जाते हैं, कितने ही पिता झूठे मुकदमों में फँसा कर कैदखाने में सड़ाये जाते हैं। साठ लाख सालाना आमदनी भी उनके लिए काफी नहीं है। हर साल दस-पाँच लाख रुपया और कर्ज हो जाता है। आपको G.C.S.I., G.C.I.E., फर्जिन्द-खास फिरंग - आदि बड़ी-बड़ी उपाधियाँ सरकार की ओर से मिली हैं। वायसराय के दरबार में सबसे पहले कुर्सी इनकी होती है और उनके स्वागत में व्याख्यान देने और अभिनन्दन-पत्र पढ़ने का काम हमेशा उल्लू शहर के नवाब बहादुर और गदहा-गाँव के महाराजा बहादुर को मिलता है। छोटे और बड़े दोनों लाट इन दोनों रईसुल उमरा की बुद्धिमानी, प्रबन्ध की योग्यता और रियाया-परवरी की तारीफ करते नहीं अघाते।

नवाब बहादुर की अमीरी को खुदा की बरकत और कर्म का फल कहने में पण्डित और मौलवी, पुरोहित और पादरी सभी एक राय हैं। रात-दिन आपस में तथा अपने अनुयायियों में खून-खराबी का बाजार गर्म रखने वाले, अल्लाह और भगवान यहाँ बिलकुल एक मत रखते हैं। वेद और कुरान, इंजील और बायबिल की इस बारे में सिर्फ एक शिक्षा है। खून-चूसने वाली इन जोंकों के स्वार्थ की रक्षा ही मानो इन धर्मों का कर्तव्य हो। और मरने के बाद भी बहिश्त और स्वर्ग के सबसे अच्छे महल, सबसे सुन्दर बगीचे, सबसे बड़ी आँखों वाली हूरें और अप्सराएँ, सबसे अच्छी शराब और शहद की नहरें उल्लू शहर के नवाब बहादुर तथा गदहा-गाँव के महाराज और उनके भाई-बन्धुओं के लिए रिजर्व हैं, क्योंकि उन्होंने दो-चार मस्जिदें दो-चार शिवाले बना दिये हैं; कुछ साधु-फकीर और ब्राह्मण-मुजावर रोजाना उनके यहाँ हलवा-पूड़ी, कबाब-पुलाव उड़ाया करते हैं।

गरीबों की गरीबी और दरिद्रता के जीवन का कोई बदला नहीं। हाँ, यदि वे हर एकादशी के उपवास, हर रमजान के रोजे तथा सभी तीरथ-व्रत, हज और जियारत बिना नागा और बिना बेपरवाही से करते रहे, अपने पेट को काटकर यदि पण्डे-मुजावरों का पेट भरते रहे, तो उन्हें भी स्वर्ग और बहिश्त के किसी कोने की कोठरी तथा बची-खुची हूर-अप्सरा मिल जायेगी। गरीबों को बस इसी स्वर्ग की उम्मीद पर अपनी जिन्दगी काटनी है। किन्तु जिस सरग-बहिश्त की आशा पर जिन्दगी भर के दुःख के पहाड़ों को ढोना है, उस सरग-बहिश्त का अस्तित्व ही आज बीसवीं सदी के इस भूगोल में कहीं नहीं है। पहले जमीन चपटी थी। सरग इसके उत्तर के उन सात पहाड़ों और सात-समुद्रों के पार था। आज तो न उस चपटी जमीन का पता है और न उत्तर के उन सात पहाड़ों और सात समुद्रों का। जिस सुमेरु के ऊपर इन्द्र की अमरावती क्षीरसागर के भीतर शेषशायी भगवान थे, वह अब सिर्फ लड़कों के दिल बहलाने की कहानियाँ मात्र हैं। ईसाइयों और मुसलमानों के बहिश्त के लिए भी उसी समय के भूगोल में स्थान था। आजकल के भूगोल ने तो उनकी जड़ ही काट दी है। फिर उस आशा पर लोगों को भूखों रखना क्या भारी धोखा नहीं है।

तुम्हारे भगवान की क्षय

लड़का माँ के पेट से ईश्वर का खयाल लेकर नहीं निकलता। भूत, प्रेत तथा दूसरे संस्कारों की तरह ईश्वर का खयाल भी लड़के को माँ-बाप तथा आसपास के सामाजिक वातावरण से मिलता है। दुनिया के धर्मों में बौद्धधर्म के अनुयायी अब भी सबसे ज्यादा हैं, लेकिन उनके दिल में सृष्टिकर्त्ता का खयाल भी नहीं उठता। रूस की नब्बे फीसदी जनता भी ईश्वर के फन्दे से दूर हट चुकी है और अब कुछ बूढ़ों को छोड़कर यह खयाल किसी को नहीं सताता। यह निश्चय है कि आज के बूढ़ों के मर जाने पर ईश्वर का नामलेवा वहाँ कोई नहीं रह जायेगा। हिन्दुस्तान में प्रार्थना-प्रदर्शनों और हरि-कीर्तनों को देखकर कुछ लोग समझते हैं कि ईश्वर का खयाल फिर से जोर पकड़ रहा है। उन्हें मालूम नहीं कि जिन लोगों में ईश्वर-विश्वास है भी, उनमें भी अब उसकी व्यापकता बहुत कम हो गयी है।

जिस समस्या, जिस प्रश्न, जिस प्राकृतिक रहस्य को जानने में आदमी अपने को असमर्थ समझता था, उसी के लिए वह ईश्वर का खयाल कर लेता था। दरअसल ईश्वर का खयाल है भी तो अन्धकार की उपज। प्रारम्भिक मनुष्य जब घर बनाकर नहीं रहता था, अपनी रक्षा के लिए जब उसके पास कुछ अनगढ़ पत्थरों के अतिरिक्त कुछ न था और साथ ही उस वक्त सारी भूमि जंगल से भरी थी जिसमें सिंह, बाघ, हाथी, भेड़िया आदि बड़े-बड़े हिंस्र पशु घूमा करते थे। दिन में भी वृक्षों के ऊपर चढ़कर, गुफाओं के भीतर छिपकर, बहुत सजग रहकर वह किसी तरह अपनी जान को बचाता था। अँधेरे में अपनी ताक में बैठे जन्तुओं का डर तो उसे बदहवास किये रहता था। इस प्रकार, वह अन्धकार प्राकृतिक मनुष्य के आज तक भय का कारण बना हुआ है। हाँ, जब आगे चलकर मनुष्य ने भाषा का विकास किया, विचारों को प्रकट करने के लिए उसके पास कुछ शब्दकोश बना और जब हर पीढ़ी अपने अनुभवों की कटु स्मृतियों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने लगी तो वास्तविक की अपेक्षा कल्पना-जात भय की संख्या बहुत बढ़ गयी। जीवन भर अपने बलिष्ठ शासक और नेता से मनुष्य थर-थर काँपता था। वह अपने आश्रितों के साथ बात की अपेक्षा लात से ही काम लेता था। इस साधारण शिक्षा-दीक्षा में कितने काने, कितने लँगड़े हो जाते और कितने जान से हाथ धो बैठते थे। ऐसे निर्दय स्वामी और मुखिया का भय उसके मरने के बाद भी लोगों के दिल से नहीं हटता था। मरने के बाद उसे वे

अपनी बस्तियों में किसी वृक्ष पर या किसी चबूतरे पर अधिष्ठित मानने लगते थे। अँधेरा होने पर किसी वक्त उसके प्रकट होने का डर था। अज्ञात भय ने इस प्रकार देवता का रूप धारण किया। और ये ही विचार आगे चलकर महान देवता (महादेव) या ईश्वर के रूप में परिणत हुए।

प्रारम्भिक मनुष्य का मानसिक विकास अभी निम्न तल पर था। उसकी शंकाएँ हल्की और समाधान सरल थे। वर्षा क्यों होती है? पर्जन्य देवता के नेतृत्व में मेघ-समूह किसी जलाशय या पहाड़ में चरने जाते हैं, वे वहाँ से पानी लेकर पर्जन्य के आज्ञानुसार जगह-जगह बरसाते हैं। इन्द्र पर्जन्य का स्वामी है। वह कभी-कभी वज्र को चलाकर अपना रोष प्रकट करता है। यही अशनि या बिजली है। पहाड़ों की आकृति को मेघ से मिलते-जुलते देखकर उस समय लोग समझते थे ये पहाड़ ही हैं जो आकाश में मेघ के रूप में उड़ रहे हैं। उनके विश्वास में पर्वतों के पर भी होते थे जिन्हें इन्द्र ने नाराज होकर किसी समय अपने वज्र से काट दिया। प्रातःकाल पूर्व दिशा में पौ फटने के साथ लाली क्यों छा जाती है? यह उषा, स्वर्ग की देवी का प्रताप है। उस वक्त सूर्य अपने प्रखर प्रकाश के कारण प्रचण्ड देवता था और वह सात घोड़ों के रथ पर त्रिभुवन की यात्रा के लिए निकलता था। आग के पास बड़े-बड़े हिंस्र पशु नहीं आ सकते। प्रकाण्ड वृक्षों और महान (ब्रह्म) जंगलों को यह धाँय-धाँय करके जला देती है। इसलिए अग्नि प्रत्यक्ष था, उसी को वे प्रत्यक्ष महान कहते थे। नदी, समुद्र सभी उस मनुष्य के लिए देवता थे क्योंकि उनमें वे अमानुषिक (दिव्य) शक्ति पाते थे, नाश करने की भीषण योग्यता देखते थे। उनमें ऐसे-ऐसे अद्‌भुत रहस्य उन्हें दिखलायी पड़ते थे जिनकी गुत्थी को वह देवता की कल्पना से ही सुलझा सकते थे। मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों में बहुदेववाद को अपने ज्ञान की सीमा के बहुत संकुचित होने के कारण स्वीकार किया था। अब हम जानते हैं कि बादल कैसे बनते हैं, कैसे बरसते हैं, कहाँ से किधर की यात्रा करते हैं। कौन-कौन से देश उनकी यात्रा-मार्ग में पड़ते हैं और कौन से दूर। बिजली बादलों में क्यों कर पैदा होती है? कड़क क्या है? सूर्य अब हमारे लिए घोड़ों के रथ का सवार नहीं रहा और न उसका वह गोल मुँह, दो आँखों और काली मूँछों वाला चेहरा ही रहा। उसकी यात्रा भी अब वह पहले वाली यात्रा नहीं रही, उषा देवी अब सूर्य की निम्नतर लाल किरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आरम्भिक मनुष्य के लिए सूर्य आकाश का सबसे बड़ा विशाल और तेजस्वी देवता था। अब हम जानते हैं कि आकाश में चमकते हुए ये छोटे-छोटे तेजो बिन्दु उतने छोटे नहीं हैं जितने कि वे हमें दिखलायी पड़ते हैं। उनमें से अधिकांश हमारे सूर्य से भी लाखों गुने बड़े और तेजस्वी हैं। आकाश को अनन्त कहकर पूर्वजों ने उसके विस्तार का एक अन्दाजा लगा लिया था, लेकिन वह अत्यन्त वास्तविकता की भित्ति पर न होकर अधिकतर अज्ञान के आधार पर आश्रित था। प्रकाश की गति प्रति सेकेण्ड एक लाख अस्सी हजार मील है। आज तक जो तारा

हमसे सबसे नजदीक मालूम हुआ है; वह इतनी दूर है कि उसकी किरण को हम तक पहुँचने में ढाई बरस लगते हैं। ध्रुव तारा हमसे बहुत दूर नहीं है, तो भी उसके जिस रूप को हम इस वक्त देख रहे हैं, वह आज से पचास बरस पहले का है। दस-दस बीस-बीस हजार बरस में अपनी किरणों को हम तक पहुँचाने वाले तारों की भारी संख्या से हमें आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। नक्षत्र-मण्डल में ऐसे भी तारे हैं जिनकी दूरी को किरणों की यात्रा के वर्षों की संख्या में बतलाना मुश्किल है। तारों, खगोल और प्राकृतिक जगत्-सम्बन्ध की अपनी इस अज्ञानता को मनुष्य देवता और ईश्वर की आड़ में छिपाता था।

भूकम्प क्यों होता है? चिपटी धरती के महान भार को शेषनाग ने अपने कन्धे पर उठा रखा है। थककर वे जब उसे एक कन्धे से हटाकर दूसरे पर रखते हैं, तब भूकम्प आता है। आज कौन इस व्याख्या को मान सकता है? कौन चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण को राहु दैत्य का अत्याचार बतला सकता है? लेकिन किसी समय हमारे पूर्वजों के लिए ये बातें ध्रुव सत्य थीं। विज्ञान ने हमारे अज्ञान की सीमा को कितनी ही दिशाओं में बहुत संकुचित किया है; और, जितनी ही दूर तक हमारे ज्ञान की सीमा बढ़ती गयी, वहाँ से ईश्वर और देवता वाला उत्तर हटता गया है। अब भी अज्ञान का क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, लेकिन आज के मनीषी उसे साफ अज्ञान के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, न कि ईश्वर और देवता के पर्दे में उसे छिपाकर।

धर्मों, भाषाओं और कथानकों के तुलनात्मक अध्ययन से मालूम होता है कि सृष्टिकर्ता एक ईश्वर का खयाल मनुष्य में बहुत पीछे से आया है। दुनिया की सबसे अधिक समुन्नत जातियाँ - यूनानी, रोमन, हिन्दू, चीनी, मिस्त्री आदि तो अपनी समृद्धि के मध्याह्नकाल तक इसे अपनाने के लिए तैयार नहीं हुईं; और उनमें से यदि किसी ने इस खयाल को माना भी तो सामीय धर्मवालों की तरह वैयक्तिक ईश्वर के रूप में नहीं, बल्कि विश्व-रूप ईश्वर के आकार में।

अज्ञान का दूसरा नाम ही ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्माते हैं, अतः उसके लिए सम्भ्रान्त नाम 'ईश्वर' ढूँढ़ निकाला गया है। ईश्वर-विश्वास का दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है।

आये दिन हर तरह की विपत्तियों, प्राकृतिक दुर्घटनाओं, शारीरिक और मानसिक बीमारियों की असह्य वेदना सहते-सहते जब मनुष्य बचने का कोई रास्ता नहीं देखता, तब यह कहकर सन्तोष करना चाहता है कि ईश्वर की यही मर्जी है; वह जो कुछ करता है, अच्छा करता है; वह हमारी परीक्षा ले रहा है, भविष्य के सुख को और भी मधुर बनाने के लिए उसने यह प्रबन्ध किया है। अज्ञान और असमर्थता के अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार ईश्वर-विश्वास के लिए है, तो वह है धनिकों और धूर्तों की अपनी स्वार्थ-रक्षा का प्रयास। समाज में होते हजारों अत्याचारों और अन्यायों को वैध साबित करने के लिए उन्होंने ईश्वर का बहाना ढूँढ़ निकाला है। धर्म की धोखाधड़ी

को चलाने और उसे न्याय साबित करने के लिए ईश्वर का खयाल बहुत सहायक है। इस सम्बन्ध में धर्म के प्रकरण में हम कुछ कह आये हैं, इसलिए फिर से उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

ईश्वर का विश्वास एक छोटे बच्चे के भोले-भाले विश्वास से बढ़कर कुछ नहीं है। अन्तर इतना ही है कि छोटे बच्चे का शब्दकोष, दृष्टान्त और तर्कशैली सीमित होती है और बड़ों की कुछ विकसित। बस, इसी विशेषता का फर्क हम दोनों में पाते हैं। एक बार, तीन छोटे-छोटे बच्चों ने मुझसे ईश्वर के सम्बन्ध में बातचीत की। उनकी उमर सात और दस बरस के बीच की थी। पूछा कि ईश्वर कहाँ रहता है, उत्तर मिला - 'आकाश में?' धरती में कहने से प्रत्यक्ष दिखलाने की जरूरत पड़ती, क्योंकि धरती प्रत्यक्ष की सीमा के भीतर है। आकाश अज्ञान की सीमा के अन्तर्गत है, इसलिए वहाँ उसका अस्तित्व अधिक सुरक्षित है। ईश्वर के रंग-रूप के बारे में लड़कों का एक मत न था। कोई उसे अपनी शक्ल का बतलाते थे और कोई विचित्र शक्ल का। "ईश्वर क्या करता है?" - यह सबसे मुख्य प्रश्न था। इसे लड़के भी अनुभव करते थे, क्योंकि जिस वस्तु का आकार प्रत्यक्ष नहीं होता, उसकी सत्ता उसकी क्रिया से सिद्ध हो सकती है। लड़कों ने कहा - "वह हमें भोजन देता है।" "और तुम्हारे बाबूजी?" - "बाबूजी को ईश्वर देता है।"

"जिस दिन बाबूजी कचहरी में वकालत करने नहीं जाते, उस दिन क्यों नहीं उनके जेब में रुपये आ जाते?" लड़कों को समाज के दुरूह संगठन का उतना पता नहीं होता और जुए के खेल की तरह किस तरह वास्तविक न्याय न करके सौ रुपये को हराकर दो को जिताया जाता है, इसका भी उन्हें पता नहीं। इसलिए उन्होंने उस तरह के प्रश्नोत्तर नहीं उठाये। हाँ, उन्हें यह मालूम हो गया कि जहाँ तक खाने-कपड़े, मकान, खेल-तमाशे में खर्च देने का सवाल है, उसका हल माता-पिता और अभिभावकों द्वारा ही होता है। वहाँ ईश्वर की सहायता सन्दिग्ध-सी जान पड़ती है। लेकिन, जब उससे पूछा गया - "तुम्हें सिरदर्द कौन देता है - माँ-बाप या सगे-सम्बन्धी?" - वे तो विह्वल हो जाते हैं, अम्मा और बाबूजी क्यों ऐसा चाहेंगे?" वहाँ ईश्वर का हाथ होना उन्हें आसानी से स्वीकार कराया जा सका।

"और पेटदर्द?" - ईश्वर देता है।

"यक्ष्मा से घुला-घुलाकर तुम्हारे पड़ोसी को किसने मारा?" - "ईश्वर।"

"सात दिन के बच्चे की माँ को मारकर कौन उसे अनाथ करता है?" - "ईश्वर।"

"माँ के एकलौते बच्चे को मारकर कौन उसे ऐसा विलाप करने को मजबूर करता है जिसे सुनकर पशु-पक्षी और पत्थर तक का हृदय पिघल जाता है?" - "ईश्वर।"

"चैत-वैशाख के दिनों में एक-एक आम के ऊपर दस-दस करोड़ कीड़ों को सिर्फ धूप और हवा में मरने का मजा चखने के लिए कौन पैदा करता है? कौन बरसात

के दिनों में धरती पर असंख्य मच्छरों, कीड़ों-मकोड़ों को तड़प-तड़पकर मरने के लिए पैदा करके अपनी असीम दया का परिचय देता है?" - "ईश्वर।"

"तब तो उसमें दया बिल्कुल नहीं। उतनी भी दया नहीं, जितनी कि क्रूर से क्रूर आदमी में सम्भव हो सकती है। रोते-तड़पते बच्चे को देखकर पत्थर का दिल भी पिघल जाता है। तुम भी उसकी माँ को उस दिन नन्हे बच्चे के मरने पर रोती देखकर अफसोस करते थे कि नहीं?"

"मैं भी रो रहा था। कैसा सुन्दर लड़का, उसका गोल-मटोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और बिना दँतुली के मुँह के हँसते वक्त बालों में पड़े गड्ढे अब भी बड़े सुन्दर याद आते हैं।"

"ऐसे बच्चे को मारने वाला कौन - आदमी या राक्षस?" - "राक्षस से भी खराब।"

हाँ, दुनिया में प्राणियों के सुख की घड़ियाँ कम और दु:ख की अधिक हैं। एक मच्छरों की ही योनि ले ली जाये, तो उसकी संख्या शंख-महाशंख से भी ऊपर चली जायेगी और इस तरह की योनियाँ भी हमारी इस पृथ्वी पर अरबों होंगी। अत्यन्त छोटे, दूरबीन से दिखायी देने वाले कीड़े से लेकर समुद्र की विशाल मछलियों तक अरबों योनियाँ हैं। उनमें अधिकांश शंख-महाशंख तक प्राणी अपने में रखती हैं। कहा जाता है कि जो मनुष्य यहाँ, इस लोक में, निकृष्ट कर्म करता है, वही परलोक या परजन्म में इन निकृष्ट योनियों में, दण्ड पाने के लिए पैदा होता है; पर यह बात टिकती नहीं, क्योंकि इस पृथ्वी पर मनुष्य की सारी संख्या डेढ़ अरब के ही आस-पास है। फिर डेढ़ अरब मनुष्यों के पुरबीले कर्म को भोगने के लिए इतनी अधिक संख्या में जीव कैसे पैदा हो सकते हैं? ईश्वर ने इन असंख्य जीवों को सिर्फ यन्त्रणा और कष्ट के लिए पैदा करके क्या अपनी कृपा का परिचय दिया है? इन्साफ तो उसमें छू नहीं गया, बल्कि उसके इस कर्म से तो यही पता लगता है कि उससे बढ़कर जालिम और पाषाण-हृदय दुनिया में और कहीं नहीं मिल सकता। शेर भी हिरण का शिकार करता है, अपनी भूख को दूर करने के लिए; छिपकली पतिंगे को दबोचती है, पेट भरने के लिए। सभी जीवधारी दूसरे जीव को आत्मरक्षा और जीवन-धारण के लिए मारते हैं। भरसक तड़पा-तड़पाकर मारना भी पसन्द नहीं करते! लेकिन ईश्वर जिनको मारता है, क्या उनके मांस से वह अपनी भूख शान्त करता है, या आत्मरक्षा के लिए उसे वैसे करना आवश्यक मालूम होता है? इन दोनों के न होने पर सिर्फ खेल के लिए ऐसा घोर कृत्य ईश्वर को क्या बतलाता है?

तुम्हारे सदाचार की क्षय

व्यभिचार

सद्-आचार अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों का आचार। श्रेष्ठ किसे कहते हैं? क्या श्रेष्ठ की कोटि में उस गरीब की गिनती हो सकती है जो ईमानदारी से की गयी अपनी कमाई को खाने का हक न रखकर दाने-दाने को मुहताज है? नहीं, श्रेष्ठ से मतलब है पुराने-नये राजा, राजऋषि, बड़े-बड़े राजाओं के पुरोहित और गुरु-ऋषि-मुनि; जिन्होंने कि सदाचार-प्रतिपादक शास्त्र और स्मृतियाँ बनायी हैं। श्रेष्ठ से मतलब है पीर-पैगम्बर, मूसा दाऊद से, जो कि खुद राजा या शासक थे, अथवा किसी दूसरे तरीके से बहुत जन-धन के स्वामी बन गये थे। ऐसे "श्रेष्ठ" पुरुषों का चाल-व्यवहार तो दुनिया का सदाचार बना हुआ है। उनके सदाचार भी एक तरह के नहीं हैं। कहीं सोलह-सोलह हजार स्त्रियाँ कृष्ण और दशरथ जैसे सदाचारियों के यहाँ बतलायी जाती हैं। सुलेमान, दाऊद तथा दूसरे सामीय पैगम्बर भी इस बारे में बहुत "उदार" थे। आज भी हमारे यहाँ वाजिद अली शाहों की कमी नहीं है। अभी हाल ही में एक महाराजा मरे हैं जो कि इस बारे में दूसरे वाजिद अली शाह थे। सच तो यह है कि यदि धनिक ही हमारे सदाचार के आदर्श माने जायें, तो ऐसे सदाचार का तो न रहना ही भला है। एक पुरुष एक स्त्री के रहते दो-दो, चार-चार और अधिक विवाह भी कर सकता है, तो भी हिन्दू और इस्लाम धर्म के अनुसार उसके सदाचारी होने में कोई शंका नहीं उठ सकती, लेकिन इन धर्मों के अनुसार इसी स्वतन्त्रता को लेकर यदि कोई स्त्री एक साथ दो पति रक्खे तो वह दुराचार हो जायेगा। आखिर दुनिया में ऐसे भी देश हैं जहाँ एक स्त्री का एक साथ कई पति रखना जरा भी अनुचित नहीं समझा जाता। तिब्बत में यह प्रथा आम है। वहाँ शायद ही कोई स्त्री मिलेगी जिसके अनेक पति न हों और, यह बात तो हमारे पुराने इतिहास में भी मिलती है। पाँच पति रखने पर भी द्रौपदी भारत की प्रात:स्मरणीय पंचकन्याओं में से थी। आखिर इसमें सदाचार है क्या? बहुत से देश हैं जहाँ पुराने समय से आज तक बहुपति-विवाह, बहुपत्नी-विवाह विहित समझा गया है और बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ बहुपत्नी-विवाह, को उतना ही अनुचित समझा जाता है जितना कि बहुपति-विवाह को। यूरोप, अमेरिका, जापान ऐसे ही देशों में हैं। न्याय की दृष्टि से देखने पर तो यह साफ मालूम पड़ता है कि यदि एक स्त्री के अनेक

पति होना खराब है, तो एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होना भी उतना ही खराब है। आजकल के जीवित प्रधान धर्मों में कोई भी ऐसा नहीं है जो सिर्फ एक पति-विवाह और एक पत्नी-विवाह को ही उचित ठहराता हो तथा दोनों तरह के बहुविवाहों का निषेध करता हो।

लेकिन यह यौन सदाचार सिर्फ बाहरी बात है। भीतर देखने पर तो हालत और भी वीभत्स मालूम देती है। हर एक धनी और शक्तिशाली व्यक्ति पुराने समय से आज तक विवाहिता स्त्रियों के अतिरिक्त भी अनेक दासियाँ और रखेलियाँ रखता आया है और वेश्यावृत्ति तो लक्ष्मी की शोभा समझी जाती है। यदि पुरुष उतनी ही चंचलता दिखलाये तो वह मर्द-बच्चा कहलाकर बच जाता है, लेकिन 'वेश्या' शब्द का लांछन सिर्फ स्त्री पर लगता है। बचपन से हर एक व्यक्ति तथा चिरकाल से हमारा समाज ऐसे वातावरण में पलता चला आया है जिसमें पुरुष के लिए सदाचार की जो कसौटी कायम है, उस पर जब स्त्री को तौलने लगते हैं, तो हम आश्चर्य करते हैं। दुनिया भर में 'सदाचार'-'सदाचार' चिल्लाया जा रहा है। हिन्दुस्तानियों को यह नहीं समझना चाहिए कि इसका ठेका सिर्फ उन्हीं को मिला है। यूरोप, अमेरिका, एशिया सभी मुल्कों में इस पर जोर दिया जाता है, धर्म और ईश्वर पर विश्वास रखने वाले तो खास तौर से इसके लिए जमीन-आसमान एक करते हैं। लेकिन साथ ही सदाचार का जितना कम पालन धर्मानुयायी और ईश्वर-भक्त करते हैं, जितनी अवहेलना उनके यहाँ इस नियम की होती है, उतनी और जगह नहीं। रूस से धर्म और ईश्वर का राज उठ गया है, लेकिन आप दुनिया में सिर्फ वही एक देश पायेंगे जहाँ से वेश्यावृत्ति एकदम उठ गयी है। क्या हमारे देश में ऐसे सदाचार की खिल्ली उड़ाने वाले सबसे ज्यादा हिन्दू-तीर्थ और हिन्दू-मठ नहीं हैं? अयोध्या में चले जाइये और वहाँ के बड़े से बड़े अवतारी भगवद्भक्त और सिद्ध-महात्मा को ले लीजिये, उनके बारे में भी पूछ लीजिये कि जिन्हें मरे अभी कुछ ही साल हुए हैं। मालूम होगा, सदाचार के सम्बन्ध में कैसे-कैसे वीभत्स काण्ड वहाँ होते हैं। ये स्थान स्वाभाविक ही नहीं, अस्वाभाविक व्यभिचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। बाहर से जाने वाली भोली-भाली जनता, जिन पर तप, ब्रह्मचर्य, सदाचार की साक्षात मूर्ति समझकर अपना तन-मन-धन वारती है, वे हैं जघन्य कामुकता के साक्षात अवतार। ऐसे आदमियों के मुँह से ब्रह्मचर्य और सदाचार के लम्बे-लम्बे उपदेश सुनकर तो हठात कहना पड़ता है - निर्लज्जता, तेरा बेड़ा गर्क हो। साधु-संन्यासियों के इस विषय के क्रियात्मक विचार उससे बिल्कुल ही दूसरे हैं, जैसेकि वे उनके श्रीमुख से निकलते हैं। भारत में कितनी ही धर्म-मण्डलियाँ गुप्त व्यभिचार में आसानी पैदा करने के लिए कायम हुई हैं; कितने ही भगवद्भवन और भजनाश्रम लोगों की आँखों में धूल झोंकने को स्थापित हुए हैं। चाहे युक्त प्रान्त में घूमिये, चाहे गुजरात में; चाहे पंजाब को देखिये, चाहे बंगाल को; चाहे नेपाल को जाइये, चाहे मद्रास को, सभी के घर में मिट्टी का चूल्हा है, सभी नागनाथ-साँपनाथ

बराबर हैं। सदाचार में जो जितना ही पतित है, वह उतना ही अधिक सुन्दर लच्छेदार शब्दों में उस पर व्याख्यान दे सकता है। नगरों और देशों के दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं। जहाँ आप हैं, वहीं घरों और चहारदीवारियों के भीतर सभ्यता और दिखावे के बाहरी लिबास को हटाकर देखिये। आपको मालूम होगा कि ब्रह्मचर्य और सदाचार के नियम जितने ही कड़े बनाये गये हैं, उतनी ही आसानी से उन्हें तोड़ा जाता है। हमारे एक महान राजनैतिक नेता का ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर है; लेकिन पास में, उनकी छाया में, उनके बड़े-बड़े अनुयायियों ने जिस प्रकार बराबर उन्हें तोड़ने में ही उन नियमों का पालन किया है, उससे तो यही मालूम होता है कि जब बाँध से बूँद भर पानी का रुकना सम्भव नहीं, तो ऐसे बाँध की जरूरत ही क्या?

सदाचार के सम्बन्ध में दरअसल "मानसि अन्यत्-वचसि अन्यत्" का पक्का अनुयायी हमारा समाज दीख पड़ता है। भीतर की सारी पोल को देखते हुए कितनी तन्मयता के साथ हम आपस में इसकी धार्मिक चर्चा करते हैं? उस वक्त मालूम होता है कि हमारे समाज में कोई उसकी अवहेलना करने वाला है ही नहीं! या, हम किसी दूसरे जगत में बैठकर वार्तालाप कर रहे हैं। निश्चय ही हम लोग जब वास्तविक स्थिति पर विचार करते हैं, तब मालूम होता है कि हमारे समाज में ब्रह्मचर्य और सदाचार एक भारी ढकोसले से बढ़कर कोई महत्त्व नहीं रखता। ताज्जुब होता है कि हजारों बरसों से हमारे समाज ने ऐसी आत्मवंचना का धुआँधार प्रचार करके कौन-सा लाभ समझा है? 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' - के अनुसार बल्कि जितनी ही शताब्दियाँ बीतती गयीं उतना ही हमारे सदाचार का तल नीचे गिरता गया है - परिमाण में नहीं, उसमें तो देशकाल-भेद से कोई अन्तर नहीं पड़ा, हाँ, जुगुप्सित प्रक्रिया में।

जिन देशों में स्त्रैण सम्बन्ध पर हल्के नियन्त्रण रक्खे गये हैं, वहाँ के लोग इस विषय में ज्यादा अनुकरणीय आचरण रखते हैं। नियमों और निर्बन्धों की अधिकता सिर्फ दूसरों की आँख में धूल झोंकने के लिए हमें अधिक निपुण बनाने में सफल हुई है। रोमन-कैथोलिक जैसे कितने ही धर्म ऐसे अपराधों की स्वीकृति के लिए बहुत जोर देते हैं। वहाँ गृहस्थ स्त्री-पुरुष, साधु-साधुनी किसी माननीय व्यक्ति के सामने समय-समय पर अपने अपराधों को स्वीकार करते हैं। शायद यह प्रथा इसलिए चलायी गयी कि "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।" लेकिन परिणाम क्या होता है? पहले एक-दो बार अपराध-स्वीकृति में जो थोड़ा संकोच होता है, वह भी पीछे जाता रहता है मानस-शास्त्रवेत्ता ठीक कहते हैं कि अपूर्ण स्त्रैण इच्छाएँ और भी उग्र रूप धारण कर मनुष्य के अन्तस्तल में मौके की ताक में पड़ी रहती हैं। धर्मों ने सबसे ज्यादा जोर जिस पर दिया है, उसकी इस प्रकार से सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन अवहेलना देखकर तो यही कहना पड़ता है कि इस ढोंग, इस बकवास से फायदा क्या?

हमारे देश के एक बड़े आदमी हैं। धर्म पर वह अपनी बड़ी भारी अनुरक्ति दिखलाते हैं। भगवान का नाम लेते-लेते गदगद होकर नाचने लगते हैं और ऐसे प्रदर्शन में काफी रुपया खर्च करते रहते हैं। उनकी हालत यह है कि जिस वक्त बड़े वेतन वाले पद पर थे, तब कभी रिश्वत बिना लिये नहीं छोड़ते थे और स्त्रियों के सम्बन्ध में तो मानो सभी नियमों को तोड़ देने के लिए भगवान की ओर से उन्हें आज्ञा मिली है।

एक प्रातःस्मरणीय राजर्षि को मरे अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। उनकी भगवद्भक्ति अपूर्व थी। सबेरे ईश्वर-भक्ति पर एक पद बनाये बिना वह चारपाई से उठते न थे और पूजा-पाठ में उनके घण्टों बीत जाते थे। लेकिन, दूसरी ओर हाल यह था कि अपने नगर और राज्य में जहाँ किसी सुन्दरी का जैसे ही पता लगा कि जैसे हो उसे मँगवाकर ही छोड़ते थे।

एक तरुण विधवा रानी थीं। उनके पास बड़ी भारी जायदाद थी। एक बड़े तीर्थ में भगवद्-चरणों में लवलीन हो अपना दिन काटती थीं। धार्मिक-उत्सव, पूजापाठ में खुलकर रुपया खर्च करती ही थीं, साथ ही उनके यहाँ बहुत से विद्यार्थियों को भी रखकर भोजन दिया जाता था। रानी साहिबा अपनी आँख से देखकर विद्यार्थी को भर्ती होने देती थीं और तरुण विद्यार्थी रात-रात भर पार्थिव पूजा में उनकी सहायता करते थे। अत्यन्त वृद्धा होने पर भी उनकी अपार काम-पिपासा में कोई अन्तर नहीं आया।

एक बड़े भारी हिन्दू धर्म के नेता और विष्णु के साक्षात अवतार महात्मा की बात है। उन्होंने हिन्दू-धर्म के प्रचार और रक्षा के लिए बहुत विशाल आयोजन किया। उसमें भारत के बड़े-बड़े राजा, सेठ-साहूकार शामिल थे। धार्मिक जगत में जितनी उनकी धाक रही, उतनी कम ही किसी की होगी। लेकिन उनकी भीतरी लीला को देखिये तो मालूम होगा कि रासलीला करने के लिए साक्षात कन्हैया ही अवतार लेकर चले आये हैं। सुन्दरी विधवाओं पर आपका खास तौर से अनुराग रहता है।

एक और महाराज रहे हैं जिनकी शास्त्रीय विद्वता, धर्म-परायणता, दान और सदाचार की धाक सारे भारत पर रही है। लेकिन भीतर से उपासना, कुमारी-पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर वह अपनी सभी वासनाओं की पूर्ति के लिए स्वतन्त्र थे और ऐसे धार्मिक पुरुष से परिवार वाले लोग बहुत बचकर रहना चाहते थे।

मद्यपान

शराब की मुमानियत संसार के कई प्रधान धर्म करते हैं। इस्लाम भी अपने को इसका जानी दुश्मन कहता है। शराब पीना भारी दुराचार माना जाता है। लेकिन धनिकों में पिछले तेरह सौ साल के भीतर कितनों ने इस नियम की पाबन्दी की है? बहुत

जगह तो शराब की दुकानों के मालिक मुसलमान हैं। जिस वक्त मुसलमानी सल्तनतों ने शराब के खिलाफ कड़ी-कड़ी सजाएँ मुकर्रर की थीं, उस वक्त भी धनी लोगों को शराब पीने में बाधा नहीं होती थी। हिन्दुओं में भी कितने ही सम्प्रदाय मद्यपान को महापाप समझते हैं। लेकिन कितनी जातियाँ हैं जिनके धनिक उससे बचे हुए हैं? ब्राह्मण, बनिया, राजपूत, जिस किसी के पास खर्च करने के लिए इफरात पैसा है, बेखटके पीता है; और जात वाले टुक-टुक ताकते रह जाते हैं। शराब के पीछे लाठी लेकर फिरने वाले महात्माजी के अनुयायियों में भी कितने बड़े-बड़े महापुरुष हैं जो भीतरी तौर से इसके बारे में अपने गुरू से भारी मतभेद रखते हैं, चाहे मद्य-निषेध की व्यवस्था देने में वह किसी से पीछे रहनेवाले न भी हों।

असत्य

सत्य-भाषण की ओर धर्म और समाज जोर दे रहा है; और मैं मानता हूँ कि वह उतना मुश्किल नहीं है, यदि समाज में अधिक कृत्रिमता न हो; तो यह सत्यभाषण भी आजकल कितना कठिन काम है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस कठिनाई की जवाबदेही है अधिकतर हमारे समाज की वर्तमान बनावट पर, जिसमें सत्यवक्ता के लिए स्थान नहीं है। हमारी राजनीतिक संस्थाएँ असत्य-प्रचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। झूठ का प्रयोग होता है लोगों को धोखा देने में। अपने स्वार्थ के लिए झूठ बोलकर दूसरों को धोखा देना हर एक राष्ट्र और राजनीतिज्ञ अपना परम कर्तव्य समझता है। राजनीतिक कोश में मानो झूठ बोलना पाप में गिना नहीं जाता। हमारे धर्म और समाज का सत्यभाषण पर इतना जोर व्यर्थ है, जब दूसरी ओर वही व्यक्तियों को झूठ बोलने के लिए मजबूर करता है। स्कूल में एक लड़का दवात तोड़ देता है। यदि वह तोड़ना स्वीकार करता है, तो उसे दण्ड और भर्त्सना सहने के लिए मजबूर होना पड़ता है और झूठ बोल देता है तो साफ छूट जाता है। मारपीट और दूसरे अपराधों में भी झूठ बोलने वाले ही नफे में रहते हैं, फिर कौन सत्य बोलकर दण्ड भोगने के लिए तैयार होना चाहेगा? ईमानदारी से काम करके आजकल पेट भर खाना मिलना मुश्किल है। सच बोलकर लोगों की मैत्री प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए तो आदमी झूठ बोलने पर उतारू होता है। आजकल की बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ, बड़े-बड़े पद, ऊँचे-ऊँचे सम्मान झूठ बोलने की निपुणता के लिए पारितोषिक हैं; कहने के सदाचार और हैं, करने के और। जब तक सारे समाज के सम्बन्ध में यह बात है, एक अकिंचन व्यक्ति अपने को कैसे उससे बचा सकता है? कितनी ही जंगली जातियाँ हैं जो पूँजीवादी सभ्यता और संस्कृति में इससे नीची समझी जाती हैं, लेकिन उनमें झूठ बहुत कम देखा जाता है। इसका मतलब है कि यह सभ्यता और संस्कृति उन्नत होकर हमारे समाज को सत्य के सम्बन्ध में और नीचे ले जाती है। हमारे समाज ने ढोंग, आत्मवंचना को जितना ही अधिक आश्रय दिया है, उतना ही हर एक व्यक्ति अपने विचारों को

स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करने में असमर्थ है, समाज का हर एक व्यक्ति अपने लिए तो नहीं चाहता, लेकिन दूसरे को जैसे हो तैसे धोखा देकर अपना काम बनाना चाहता है। किसी का किसी के ऊपर पूरी तरह से विश्वास नहीं, इसका परिणाम हो रहा है – स्त्री पुरुष को वंचित करना चाहती है और पुरुष स्त्री को; पिता पुत्र को धोखा देना चाहता है और पुत्र पिता को। आखिर इस प्रकार की वंचना, अराजकता का जिम्मेवार कौन है? हमारा समाज।

चोरी-रिश्वत

पुराने जमाने में चोरी के लिए लोगों का हाथ काट दिया जाता था, जान ले ली जाती थी। आजकल सजाएँ कुछ हल्की हैं, लेकिन तब भी समाज की दृष्टि में चोरी भारी पाप समझी जाती है। उसके लिए सख्त कानून और जबरदस्त जेलखाने बने हैं। सरकार लाखों रुपया पुलिस पर खर्च करती है। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पाने वाले जज और मैजिस्ट्रेट इसके लिए नियुक्त किये गये हैं। लेकिन क्या इससे यथेष्ट रोकथाम है? जिन लोगों को चोरी बन्द करने का काम मिला है, यदि वे खुद वही काम करते हों, तो उनके किये चोरी कैसे बन्द होगी? पुलिस चोरों को पकड़ने और चोरी रोकने के लिए अपने को जिम्मेवार समझती है, लेकिन चौकीदार और कान्सटेबल ही नहीं, थानेदार, इन्सपेक्टर और ऊपर के अफसर तक हाथ गरम कर देने पर तरह दे देते हैं। सभी लोग जानते हैं कि सौ में नब्बे थानेदार रिश्वत लेते हैं, देहात में किससे यह बात छिपी हुई है? पुलिस कुछ चोरों को पकड़-पकड़कर जेल में भेजती जरूर है, लेकिन क्या कभी किसी ने यह हिसाब लगाया है कि कितने असली अपराधियों को उसने रुपया लेकर छोड़ दिया? जनता की सरकार के कायम होने पर भी हम पुलिस के इस रवैये में कोई फर्क नहीं देखते। जब तक इस तरह रिश्वत का बाजार गर्म है, तब तक चोरी कैसे रुक सकती है? खयाल करने की बात है कि जिन लोगों को अपने परिवार की परवरिश के लिए काफी रुपया हर महीने मिल जाता है, यदि वे अवैध आमदनी से हाथ हटाना नहीं चाहते तो भूख की पीड़ा से पीड़ित होकर चोरी करने वाले अपने को कैसे रोक सकेंगे?

जेलों में अपराधी चालचलन सुधारने के लिए भेजे जाते हैं। किसी समय दण्ड का अभिप्राय यन्त्रणा से अपराधी को भयभीत करना था, लेकिन आज की सभ्यता की दुनिया सजा और जेल को सुधार करने का मौका देना समझती है। इन जेलों की क्या हालत है? कैदी जाकर वहाँ देखता है कि छोटे सिपाही से लेकर सुपरिण्टेण्डेण्ट तक कैदियों के भाग में से कुछ न कुछ जरूर अपने इस्तेमाल में लाते हैं। तीन मन चावल में आधा मन निकाल लिया जाता है। आटे में चोकर और मिट्टी भी डाल दी जाती है। अच्छी तरकारियाँ अफसरों की डालियों के लिए सुरक्षित रक्खी जाती हैं और मामूली तरकारी में से भी अच्छा भाग दूसरे ले जाते हैं और कैदियों के हिस्से

में सिर्फ घास और पत्ता पड़ता है। तेल, दूध, घी, गुड़ – सभी खाद्य वस्तुओं में इस तरह की लूट है। सिगरेट और तम्बाकू को वर्जित कर सरकार कैदियों को संयम का पाठ पढ़ाना चाहती है, लेकिन उसका परिणाम सिर्फ इतना ही है कि पैसे वाले कैदियों को ये चीजें कुछ महँगी पड़ती हैं। वस्तुतः जिस कैदी के पास रिश्वत देने के लिए पैसा है, उनके लिए जेल में सब तरह का प्रबन्ध हो जाता है। इस तरह के वातावरण में खाक सुधार होगा?

तुम्हारे न्याय की क्षय

हमेशा से न्याय करने का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। समाज और उसके नेता धनिकों की तरफ से गरीबों पर कितना अन्याय होता है, इसके बारे में हम कह आये हैं! दुनिया की सरकारें कितना न्याय कर रही हैं, इसे जरा देखना है। आजकल की सरकारें न्यायालय और कानून बनाने पर बहुत ध्यान देती हैं और कहा जाता है कि यह सब इसीलिए कि जिसमें सबको न्याय पाने में सुभीता हो। लेकिन क्या गरीबों को न्याय पाने का सुभीता है? जिस वक्त न्यायालय नहीं थे, सिर्फ पंचायतें थीं; जिस वक्त कानून नहीं थे, सिर्फ व्यवहार-बुद्धि निर्णायक थी, जिस समय वकील नहीं थे, हर आदमी अपना वकील था – उस वक्त गरीब के लिए न्याय पाना अधिक आसान था! कानून न्याय समझने में आसानी नहीं पैदा करते, बल्कि भारी भ्रम पैदा करने का काम देते हैं; उनके कारण स्पष्ट बात भी अस्पष्ट हो जाती है। कहने को तो यह भी कहा जाता है कि कानून अवलम्बित है व्यवहार-बुद्धि – कामन सेन्स – पर। किन्तु आजकल तो उसका काम व्यवहार-बुद्धि को निकम्मा बना देने का है। सूक्ष्म प्रतिभाएँ जो समाज के हित के काम को कर सकती थीं, आज बाल की खाल उतारती कानून के अर्थ का अनर्थ करने में तत्पर हैं। झूठे मुकदमे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने में ही अच्छे वकील की तारीफ है। आये दिन, दिन-दहाड़े हम सफेद को काला और काले को सफेद होते देखते हैं।

कानून और न्यायालय धनी के विरुद्ध गरीब को न्याय देने में कितने असमर्थ हैं, इसके लिए दूर के दृष्टान्त की जरूरत नहीं। भारत के हर एक गाँव में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। मामूली अपराध की तो बात ही क्या, खून तक पचा लिए जाते हैं। जमींदार या धनी के इशारे पर आदमी मारा गया। धनी आदमी ने रुपयों का तोड़ा खोलकर डाक्टर के सामने रख दिया। डाक्टर समझता है, दस बरस में जो कमायेंगे, वह सामने रक्खा है, घर आयी लक्ष्मी को ठुकराना नहीं। लिख देता है – दिल कमजोर था, चोट साधारण थी, आदि, और, मामला दूसरे से दूसरा हो जाता है। बहुत बार तो लाश को ले जाकर तुरन्त जला दिया जाता है और फिर भय और प्रलोभन से गवाहियाँ अपने पक्ष में बना ली जाती हैं। अक्सर गरीब आदमी अदालत तक नहीं जाते। अगर धनियों द्वारा किए गये तीन खून किसी थानेदार को मिल जायें तो उसका भाग्य ही

खुल जाये। वह इतना रुपया जमा कर ले कि उसकी नौकरी चली भी जाये तो भी वह जिन्दगी भर चैन की बंशी बजाता रहेगा।

बिहार के एक बड़े जमींदार की बात है। उन्हें लाखों की आय है जिसे एक जाली बिल के जरिये उनके बाप ने उनके लिए प्राप्त किया। उस वक्त वे बिल्कुल तरुण थे। एक स्वजातीय गरीब लड़का उनके पास रहा करता था। एक दिन किसी बात से नाराज तरुण जमींदार ने उस लड़के पर पिस्तौल दाग दी। लड़का वहीं ढेर हो गया। लाश फुँकवा दी गयी और थाने के दारोगा को बुलाकर एक भारी रकम उनके सामने पेश की गयी। उस रुपये की राशि को देखकर थानेदार की आँखें चमक उठीं। पीछे वही थानेदार असहयोग में नौकरी से इस्तीफा दे राष्ट्रीय युद्ध में शामिल हो गये थे। बहुत वर्षों तक हम दोनों साथ काम करते थे। वह बतलाते थे कि कैसे रात को उन्होंने मृत लड़के के बाप के गाँव में जाकर वहाँ उसके सम्बन्धियों को पट्टी पढ़ायी। किस प्रकार ऊपर और नीचे के अफसरों में रुपये बाँटकर कानून और न्याय को अँगूठा दिखाया। खून हुआ है, इसकी खबर तक अदालत में नहीं पहुँचने पायी। जिस तरुण ने अपने साथ खेलने वाले लड़के को इस तरह पिस्तौल का निशाना बनाया, वह साधारण अपराधी दिमाग का व्यक्ति नहीं हो सकता है। यदि वह गरीब घर में पैदा हुआ होता, तो खून के कारण फाँसी पड़ने से यदि वह बच भी जाता, तो उसका स्थायी निवास प्रान्त के बड़े-बड़े जेलखानों में जन्मजात अपराधियों में तो जरूर होता, लेकिन आज वह व्यक्ति प्रान्त के बड़े प्रभावशाली धनिक अगुवों में है।

एक-दूसरे धनी जमींदार की बात है। वह अपने रोब-दाब के लिए पास-पड़ोस के बहुत से गाँवों में मशहूर थे। कहने को तो हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का राज है, लेकिन जहाँ तक उनकी जमींदारी का सम्बन्ध था, अंग्रेजी शासन का नम्बर उनके बाद आता था। मामूली मारपीट ही नहीं, बड़े-बड़े मुकदमों तक का फैसला वे जुर्माने लेकर कर दिया करते थे और किसकी शामत आती कि उनके फैसले के खिलाफ थाने तक भी जाने की हिम्मत करता। उनके गाँव में एक आदमी ने एक मैना पाला था। मैना आदमी की बात बोलता था। इसकी खबर जमींदार साहब को लगी। झट मैना माँग लाने को आदमी भेजा गया। गरीब ने दुनिया के अनुभव से बहुत शिक्षा नहीं ली थी। अपने प्रिय पालतू पशु-पक्षी में आदमी का पुत्रवत स्नेह हो जाता है। उसी स्नेह से अन्धा होकर उसने मैना को देना नहीं चाहा। यह खबर जब जमींदार को मिली तो वह आग बबूला हुआ। तुरन्त उसने एक पहलवान सिपाही उसे मारकर मैना छीन लाने के लिए भेजा। सचमुच गरीब को जान से खत्म कर मैना को पकड़ मँगाया गया। मुकदमा अदालत तक गया तो जरूर, लेकिन जमींदार साहब को एक दिन की हवालात तक की हवा खाने की नौबत न आयी।

मगह प्रान्त - पटना-गया जिलों - के जमींदार अपने अत्याचार के लिए सारे बिहार में प्रसिद्ध हैं। वहाँ के एक जमींदार का संकल्प था कि जहाँ तक हो सके,

उनकी जमींदारी में किसी किसान के नाम काश्तकारी न लगने पाये। वह अपने हर गाँव में झूठे मुकदमे चला, मारपीट और दूसरे जरियों से लोगों को तंग करके उन्हें काश्तकारी से इस्तीफा देने को मजबूर करते थे। उनके एक गाँव – जिसका नाम अब दूर तक प्रसिद्ध हो गया है – के प्रायः सभी किसान काश्तकारी से हाथ धोकर जमींदार के शिकमी रैयत बन चुके थे। उस गाँव में एक किसान का घर था जिसके पास खाने-पीने के लिए काफी खेत और धन था और परिवार में कई काम करने वाले जवान व्यक्ति भी थे। जमींदार को इस परिवार को परास्त करने में कई बार मुँह की खानी पड़ी। इस पर उसने प्रतिज्ञा की कि उस परिवार को तबाह करके उसके घर पर रेंड़ न बोआएँ तो नाम नहीं। अबकी बार किसी दूसरे गाँव से एक मरणासन्न आदमी लाकर उस गाँव में मरवाया गया और उस परिवार के व्यक्तियों पर खून का मुकदमा चलाया गया। डाक्टर ने रिपोर्ट दी कि जान-बूझकर सही-सलामत आदमी का खून किया गया है। पुलिस ने "प्रत्यक्षदर्शी" गवाहों के बयान लिये। घर के सभी सयाने पुरुष जेल में बन्द कर दिये गये। मुकदमा लड़ने में घर की सम्पत्ति स्वाहा हो गयी। आदमियों को लम्बी-लम्बी कैद की सजाएँ हुईं। घर में सिर्फ स्त्रियाँ रह गयी थीं और उनमें से भी अधिकांश भूख और बीमारी के कारण कुछ ही वर्षों में चल बसीं। मकान मरम्मत के बिना गिर पड़ा और उसके ऊपर बोये रेंड़ को कुछ साल बाद मैंने खुद अपनी आँखों देखा।

यह है आज के कानून की करामात और आज के न्याय का नमूना।

न्याय सस्ता और सुलभ नहीं है, बल्कि जबर्दस्त शत्रु के मुकाबिले में वह दुनिया की सबसे महँगी चीज है। वह इतनी खर्चीली चीज है कि धनी आदमी हारते-हारते भी गरीब को उजाड़ देता है। बिना स्टाम्प का पैसा दिये तो गरीब अदालत में दर्खास्त भी नहीं दे सकता। और, फिर, स्टाम्प ही तो काफी नहीं है? वहाँ चाहिए वकील और मुख्तार को फीस, पेशकार और सरिस्तेदार को नजराना, अर्दली और चपरासी को भेंट। जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी बड़े-बड़े वकीलों को बड़ी-बड़ी फीस देकर रख लेता है। यदि तुमने किसी टुटपुँजिया वकील को खड़ा किया तो बने मुकदमे के भी बिगड़ जाने की सम्भावना हो जाती है। घर, जमीन बेचो, जेवर बन्धक रक्खो, जैसे भी हो रुपया खर्च कर मुकदमे की पैरवी करो। अगर मुकदमा दीवानी में है और एक ही है तो फौजदारी मुकदमों की तो संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। मार-पीट, चराई आदि के कई मुकदमे साथ ही साथ फौजदारी अदालत में भी चल रहे हैं। मुन्सिफ के यहाँ से यदि फैसला पक्ष में हुआ तो सब-जज के यहाँ अपील हुई। वहाँ से भी यदि किस्मत ने मदद की तो हाईकोर्ट और इसके बाद प्रीवी कौंसिल। फौजदारी मुकदमे अलग चल रहे हैं। यदि हर इजलास में खर्च करने के लिए तुम्हारे पास रुपया नहीं है तो तुम्हारी जीत भी हार में बदल जाती है।

यह तो हुआ तब जबकि हाकिम लोग ईमानदार हों, लेकिन आजकल के हाकिमों

में कितने हैं जो जल्द से जल्द धनी बनना पसन्द नहीं करते? जिसे ढाई सौ माहवार तनख्वाह मिलती है, वह भी चाहता है पास में मोटर रखना, वह भी चाहता है कि वह और उसकी स्त्री शाहाना ठाठ में रहे, उसके लड़के-लड़कियाँ शाहजादों-शाहजादियों के कान काटें; उसके महल में राजमहल का समाँ दिखायी पड़े, उत्सव और त्यौहारों में वह शाहखर्ची का जबर्दस्त सबूत दे सके; बच्चों के पढ़ाने-लिखाने में खर्चीले से खर्चीले स्कूल और कालेजों की तलाश करे; ब्याह-शादी में बड़े-बड़े तिलक-दहेज दे और दोनों हाथों अशर्फियाँ लुटाये; उसकी पार्टी में बड़े से बड़े हाकिम और रईस शामिल हों जिनके लिए देशी और विलायती सब तरह के सुन्दर से सुन्दर भोजन परोसे जायें। आजकल के हमारे हाकिमों की जब ये हार्दिक लालसाएँ हैं, तो रुपये की चमचमाहट उन्हें क्यों न अपनी ओर आकर्षित करेगी? अगर किसी को रिश्वत लेने में संकोच होता है तो या तो इसलिए कि वह कम है अथवा भेद छिपा लेने में कठिनाई होगी। अनौचित्य के खयाल से रिश्वत से बाज आने वाले लोग बहुत मुश्किल से मिलते हैं। जिलों के छोटे-मोटे अधिकारियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। हाईकोर्ट के जज तक रिश्वत लेते पाये गये हैं और इसे मुकदमा लड़ने वाली जनता खूब जानती है। छोटे और बड़े लाटों तक को घुड़दौड़ के घोड़े, कीमती हार तथा दूसरी बड़ी-बड़ी भेंटों को देकर अपना काम बनाया गया है। एक रियासत के खिलाफ कई जबर्दस्त प्रमाण जमा हो गये थे। रिकार्ड के अधिकारी को इकट्ठा कुछ लाख रुपये दे दिये गये और दूसरे दिन देखा गया कि वे सारे प्रमाण गायब हैं।

राज तो आजकल है थैली का। शासन पर अनुशासन उसका है जिसके पास धन है। कानून बनाने वाले वे ही हैं जिनके पास तोड़ें हैं। इंग्लैण्ड के थैली वाले हिन्दुस्तान के मालिक हैं। वे कभी ऐसा कानून बनने देना पसन्द नहीं करते जिससे कि उनकी थैली पर हाथ पड़ने पाये। देश और विदेश में यातायात के साधन जहाज और रेलें इसी दृष्टि से संचालित की जाती हैं। भारत की रेलों का एक अलग महकमा बना दिया है, यह खयाल करके कि कहीं भारतीय राजनीतिज्ञों का दबाव उस पर न पड़ने लगे। कानूनों की भरमार है। हर साल हमारे देश में सैकड़ों कानून बनते और सुधरते रहते हैं। लेकिन वह इसलिये नहीं कि मनुष्य ईमानदारी से कमाई अपनी सम्पत्ति का अपने आप उपभोग कर सके। इनका मतलब सिर्फ इतना ही है कि कैसे धनिकों के हित के लिए चलते इस शासन की सहायता के लिए कुछ और काबिल-दिमाग आदमी खरीदे जा सकते हैं? कैसे कुछ और चिल्लाने वाली जमातों का मुँह बन्द किया जा सकता है? काबिल दिमागों को सरकारी बड़े-बड़े पदों पर सिर्फ इसलिये नहीं नियुक्त किया जाता कि वे अपनी योग्यता से जनता को फायदा पहुँचायें, बल्कि इसलिए कि वे चिरकाल से स्थापित स्वार्थों को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायता करें। सभी जानते हैं कि सरकारी नौकरियों में लोग बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और स्थायी जीविका के लिए दौड़ते हैं। यदि सरकारी धन को इन्साफ के साथ वितरण करना ही है तो उसके बड़े

हकदार हैं, गरीबों की सन्तानें। लेकिन हम क्या देखते हैं? गरीबों की सन्तानों के लिए तो पहले पढ़ना ही मुश्किल है, पढ़-लिखकर योग्यता प्राप्त करने पर भी बड़ी नौकरियों के लिए अपेक्षित सिफारिशें वे जमा नहीं कर सकतीं। परिणाम यह हो रहा है कि हर तरह की बड़ी-बड़ी नौकरियों में लखपतियों-करोड़पतियों, बड़े-बड़े जमींदारों और राजा-नवाबों के लड़के भरे पड़े हैं। आई.सी.एस. (I.C.S.), आई.पी.एस. (I.P.S.), आई.एम.एस. (I.M.S.) आदि अधिकारियों की सूची को उठाकर देखिये तो मालूम होगा कि देश के धनी, जमींदारों, महाजनों और प्रभावशाली राजनीतिज्ञों के लड़के ही हैं। पिता लाखों का मालिक है, एक रियासत का बड़ा मन्त्री है और लड़का सरकार के एक विभाग का सेक्रेटरी। अखिल भारतीय सरकारी अफसरों में ही नहीं, प्रान्तीय बड़ी-बड़ी नौकरियों में भी उन्हीं को जगह मिली है जिनमें अधिकांश के पास जीविका के अन्यत्र स्वतन्त्र साधन हैं। जब सरकार के चलाने वाले ये बड़े-बड़े कर्मचारी धनिक श्रेणी से आये हैं तो धनी गरीब के मामले में वे अपनी श्रेणी के स्वार्थ के विरुद्ध काम करेंगे, यह कब सम्भव हो सकता है? अंग्रेज-अधिकारियों के बारे में पिछले डेढ़ सौ बरसों का तजरबा हमें बताता है कि जहाँ काले गोरे का सवाल होता है, वहाँ वे न्याय को ताक पर रख देते हैं। कितने ही निरपराध भारतीय अंग्रेजों की ठोकरों और गोलियों के शिकार हुए हैं, लेकिन कितने मुकदमों में खूनी को फाँसी की सजा हुई है? साहेब की ठोकर से मरे आदमी की तिल्ली, डाक्टरी जाँच से, बढ़ी पायी गयी। यही न्याय का अभिनय हम धनी और गरीब के मामले में न्यायाधीश के पद पर आरूढ़ धनिकों की सन्तानों द्वारा किया जाता देखते हैं। जमींदारों और किसानों, मजदूरों और मिल-मालिकों के झगड़े में जो कड़ुवा तजरबा हमें मिल रहा है, उससे मालूम हो रहा है कि उनकी सहानुभूति हमेशा धनिकों की ओर रहती है। मारपीट और बलवे की तैयारी सबसे जबर्दस्त जमींदारों की ओर से होती है। अपनी जीविका के छिन जाने के भय से किसान शान्तिमय तरीके से उसका विरोध करते हैं। लेकिन सभी जगह देखा जाता है कि पुलिस और मजिस्ट्रेट किसान को ही अपराधी ठहराते हैं और उन्हीं के ऊपर दफा 107 या दफा 144 की कार्रवाई की जाती है आँखों से साफ देखा जाता है कि जमींदार ने बलवा करने में कोई कसर उठा नहीं रखी तो भी उसके एक आदमी को भी कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ती।

एक जगह का हमें ताजा तजरबा हैं जमींदारों ने पीढ़ियों से जोतते आते किसानों से उनके खेत को छीनना चाहा। किसान सोचने लगे कि यदि खेत निकल जायेंगे तो बाल-बच्चे जियेंगे कैसे? उन्होंने मार खाकर भी खेत छोड़ना नहीं चाहा। जमींदार ने थाने में रिपोर्ट लिखवायी। किसान की रिपोर्ट को थानेदार लिखना नहीं चाहते थे। थानेदार ने जमींदार के पक्ष में होकर कुछ किसानों पर शान्तिभंग का आरोप करके मजिस्ट्रेट को लिख दिया। फौजदारी अदालत को अपना फैसला कब्जे को देखकर देना चाहिए। मजिस्ट्रेट को जमींदार की बातों से सच्चाई का पता लग गया। किसान

चिल्लाते ही रह गये कि चलकर देख लिया जाये, खेत पर कब्जा हमारा है। दो सौ-चार सौ बीघे जोतनेवाला आदमी चौथाई और पचइयाँ एकड़ में अलग-अलग फसल नहीं बोयेगा। लेकिन मजिस्ट्रेट को वहाँ जाने की जरूरत नहीं मालूम पड़ी, उसने झट उन पर दफा 144 लगा दिया। ऊपर के अफसर ने भी बार-बार प्रार्थना करने पर भी, खेत को देखना पसन्द न किया और मजिस्ट्रेट के फैसले को बहाल रक्खा। सब तरफ से न्याय का रास्ता बन्द देखकर किसानों ने शान्तिमय सत्याग्रह की शरण ली। दिन मुकर्रर हुआ। पुलिस और हाकिमों को मालूम था कि जमींदार की तरफ से मारपीट की जबर्दस्त तैयारी हो रही है। वे यह भी जानते थे कि किसान हर हालत में शान्त रहना चाहते हैं। उनको यह भी मालूम हो चुका था कि जमींदार के हाथी इस युद्ध में खास तौर से भाग लेने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। निश्चित दिन पर हाथियों के साथ कई सौ आदमी लाठी-गँड़ासे लिये एकत्र हुए। किसानों की ओर सिर्फ थोड़े-से निहत्थे सत्याग्रही। जनता को खास तौर से बहुत संख्या में न आने के लिए कहा गया था। किसान सिर्फ ग्यारह खेतों की तरफ बढ़ते हैं। हाथियों और लट्ठधारी जवानों को लेकर जमींदार सत्याग्रहियों पर हमला करने के लिए खेत पर पहुँचता है। पुलिस की अधिक संख्या का वहाँ पता नहीं। गिरफ्तारी के बाद जब सत्याग्रही पुलिस की हिरासत में थे, तब जमींदार के आदमी ने एक सत्याग्रही पर लाठी-प्रहार किया। सिर से खून की धार बहने लगती है। प्रहार करने वाला आदमी उस वक्त गिरफ्तार कर लिया जाता है, लेकिन थोड़ी देर बाद सरकारी अधिकारी उसे छोड़ देते हैं। अन्धा भी देखकर कह सकता था कि मारपीट की सारी तैयारी जमींदार की ओर से हुई थी। लेकिन उसके एक भी आदमी को न तो पकड़ा जाता है और न उसे वैसा करने से रोका जाता है। उसके लठैत सरकार की ओर से कानून को अपने हाथ में ले लेने के लिए आजाद छोड़ दिये गये थे।

एक-दूसरे जमींदार का किस्सा है जो बतलाता है कि धनिकों के सामने न्याय और कानून की कितनी दुर्गति होती है। वे नहीं चाहते थे कि किसानों को अपने खेत में काश्तकारी का हक मिले। बहुत दिनों से किसान खेत जोतते आ रहे थे। सर्वे में लाख कोशिश करने पर भी काश्तकारी लग ही गयी। जमींदार ने मामले-मुकदमे और जोर-जुल्म की तैयारी की। किसान जानते थे कि इतने जबर्दस्त जमींदार से लड़ने में उजड़ जायेंगे, इसलिए अधिकांश ने जा-जाकर अपने इस्तीफे की रजिस्टरी कर दी। मैंने पुलिन्दे के पुलिन्दे उन रजिस्टरी-शुदा इस्तीफों को देखा है और देखते वक्त मैं सोच रहा था कि इन गरीबों के लिए न्याय क्या माने रखता है? यदि जरा भी न्याय पाने का उन्हें भरोसा होता तो अपनी और अपनी सन्तानों की जीविका के साधन इन खेतों से वे इस्तीफा क्यों देते?

जुए को कानून के खिलाफ समझा जाता है। लेकिन घुड़दौड़ की बाजी क्या है। चूँकि उसमें बादशाह तक के घोड़े शामिल होते हैं, इसलिए घुड़दौड़ का जुआ हलाल

है। और बड़ी-बड़ी लाटरियाँ क्या जुआ नहीं हैं? छोटे-मोटे जुए तो पुलिस की संरक्षकता में अक्सर होते हैं। बड़े-बड़े जुओं के संरक्षण का भार तो राज्य के सूत्रधारों के कन्धे पर है। यही न्याय है? आश्चर्य!

तुम्हारे इतिहासाभिमान और संस्कृति की क्षय

'इतिहास'-'इतिहास' - 'संस्कृति'-'संस्कृति' बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है, इतिहास और संस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीजें थीं। पचीसों बरस का अपने समाज का तजरबा हमें भी तो है। यही तो भविष्य की सन्तानों का इतिहास बनेगा? आज जो अन्धेर हम देख रहे हैं, क्या हजार साल पहले वह आज से कम था? हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है जो कि आज की तरह उस जमाने में भी मौज उड़ाया करते थे। उन अगणित मनुष्यों का इस इतिहास में कहाँ जिक्र है जिन्होंने कि अपने खून के गारे से ताजमहल और पिरामिड बनाये; जिन्होंने कि अपनी हड्डियों की मज्जा से नूरजहाँ को अतर से स्नान कराया, जिन्होंने कि लाखों गर्दनें कटाकर पृथ्वीराज के रनिवास में संयोगिता को पहुँचाया? उन अगणित योद्धाओं की वीरता का क्या हमें कभी पता लग सकता है जिन्होंने कि सन् सत्तावन के स्वतन्त्रता-युद्ध में अपनी आहुतियाँ दीं? दूसरे मुल्क के लुटेरों के लिए बड़े-बड़े स्मारक बने, पुस्तकों में उनकी प्रशंसा का पुल बाँधा गया। गत महायुद्ध में ही करोड़ों ने कुर्बानियाँ दीं, लेकिन इतिहास उनमें से कितनों के प्रति कृतज्ञ है?

इतिहास हमारे समाज की पुरानी बेड़ियों को मजबूत करता है। इतिहास हमारी मानसिक स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा शत्रु है। इतिहास हमारी पुरानी दुश्मनी और अनबनों को ताजा करता रहता है। सहस्राब्दियों से मनुष्यता का घोर शत्रु सिद्ध हुआ धर्म, बहुत कुछ इतिहास के आधार पर टिका है। विश्वामित्र हों चाहें वशिष्ठ, मनु हों चाहे याज्ञवल्क्य, व्यास हों चाहे पतंजलि, नानक हों चाहे कबीर, मूसा हों चाहे ईसा - सभी पचासों बरस इस धरती पर जीते रहे। न जाने कितनों के दिल को उन्होंने दुखाया होगा, न जाने कितनों के हक को छीना होगा, न जाने कितने दास-दासी खरीदकर जिन्दगी भर उनसे पशु की तरह काम लेते रहे होंगे। अपने मालिकों और अन्नदाताओं की चापलूसी में जाने क्या-क्या कुकर्म उन्होंने किये होंगे। सफल लुटेरों और खूनियों को आसमान पर चढ़ाने की जो प्रवृत्ति देखी जाती है, उससे मालूम होता है कि इतिहास की वीरपूजा में भी इसका बहुत बड़ा अंश रहा होगा।

हिन्दुओं के इतिहास में राम का स्थान बहुत ऊँचा है। आजकल के हमारे बड़े नेता, गाँधीजी, मौके-ब-मौके रामराज्य की दुहाई दिया करते थे। वह रामराज्य कैसा होगा जिसमें कि बेचारे शूद्र शम्बूक का सिर्फ यही अपराध था कि वह धर्म कमाने के लिए तपस्या कर रहा था और इसके लिए राम जैसे अवतार और धर्मात्मा राजा ने उसकी गर्दन काट ली? वह रामराज्य कैसा रहा होगा जिसमें किसी आदमी के कह

देने मात्र से राम ने गर्भिणी सीता को जंगल में छोड़ दिया? रामराज्य में दास-दासियों की कमी न थी। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी तक दुनिया में दास-प्रथा कितनी क्रूरता के साथ प्रचलित थी, इसका हमें काफी ज्ञान है। उस वक्त स्वेच्छापूर्वक अपने को और अपनी सन्तान को बेचा ही नहीं जाता था, बल्कि समुद्र और बड़ी नदियों के किनारे के गाँवों में तो आदमियों को पकड़ ले जाने के लिए बाकायदा हमले हुआ करते थे। डाकू गाँव पर छापा मारते थे और धन के साथ-साथ वहाँ के काम करने लायक आदमियों को पकड़ ले जाते थे। हर साल हजारों इस तरह के गुलाम पोर्तुगीज डाकू पकड़कर बर्मा के अराकन प्रदेश में बेचा करते थे। रामराज्य में यदि इस तरह की लूट और डाकेजनी न रही होगी तो दास-प्रथा तो जरूर ही थी। अभी दस ही बारह साल हुए हैं जबकि हिन्दुओं के अभिमान की जगह नेपाल राज ने अपने यहाँ दास-प्रथा का अन्त किया। मिथिला में अब भी कितने घरों में वे कागज हैं जिनमें बहिया (दास) के क्रय-विक्रय दर्ज हैं। दरभंगा जिले के तरौनी गाँव (थाना बहेड़ा) में दिगम्बर झा के परदादा ने कुल्ली मँड़र के दादा को किसी दूसरे मालिक से खरीदा था और दिगम्बर झा के दादा ने पचास रुपये के फायदे के साथ उसे बेच दिया। अभी तीन ही पीढ़ी पहले अंग्रेजी राज तक में यह प्रथा मौजूद थी और सच्चे धार्मिक हिन्दू हों चाहे मुसलमान, दोनों जब अपनी मनुस्मृतियों और हदीसों में दासों के ऊपर मालिकों के हक के बारे में पढ़ते हैं तो उनके मुँह में पानी भर आये बिना नहीं रहता।

आइये, रामराज्य की दास-प्रथा की एक झाँकी लीजिये। एक साधारण बाजार है जिसमें सिर्फ दास-दासियों की बिक्री होती है। लाखों वृक्षों का बाग है। खाने-पीने की चीजों की दूकानें सजी हुई हैं। भेड़-बकरियों और शिकार किये जानवरों के अतिरिक्त उच्च वर्ण के आर्यों के भोजन तथा मधुपर्क के लिए गोमांस खास तौर से तैयार करके बेचा जा रहा है। जगह-जगह सफेद दाढ़ी वाले ऋषि, दूसरे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने पड़ाव डाले पड़े हुए हैं। कोई नया दास या दासी खरीदने आया है। किसी के दिन कुछ बिगड़ गये हैं, इसलिए वह अपने दासों या दासियों को बेचकर कुछ नकद जमा करना चाहता है। कुछ सिर्फ इस खयाल से अपने दास-दासियों को मेले में लाये हैं कि उन्हें बेच कर 'नया' कर लिया जाये। कुछ बड़े व्यापारी ऐसे भी हैं जो झटपट बेचकर चले जाने की इच्छा रखने वालों की आसानी के लिए सस्ते में दास-दासी खरीद लेते हैं और अधिक मुनाफे के साथ बेचते हैं। स्वामियों ने महीनों पहले मेले में चलने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने अपने दास-दासियों को खूब अच्छा खाना देना शुरू किया था जिसमें कि मांस और चर्बी से उनकी हड्डियाँ ढक जायें और बाजार में अधिक दाम आ सके। उनके सफेद बालों को काला रंगा गया है और मेले में कपड़े-लत्ते से अच्छी तरह सँवारकर उनकी हाट लगायी गयी है। कहीं-कहीं आदमी अपने एकाध दास या दासी को लेकर बैठे हैं और कहीं-कहीं सौ-सौ, दो-दो सौ की पाँत लगी हुई है। खरीदारों की भीड़ है। खरीदने वाले कहते

हैं – अबकी बाजार बहुत महँगा रहा, पिछले साल अठारह बरस की हट्टी-कट्टी सुन्दरी दासी दस रुपये में मिल जाती थी, अबकी बार तो तीस में भी हाथ धरने नहीं देते। एक आदमी को दासी खरीदनी है, लेकिन पैसे उसके पास कम हैं। वह एक चालीस बरस के सौदे के पास पहुँचता है। दासी के तिहाई बाल यद्यपि सफेद हो गये थे, लेकिन उन्हें रँगकर काला किया था। मालिक की खुशकिस्मती समझिए कि दासी के दाँत सभी मजबूत थे। खरीदार ने पास जाकर उसके दाँत देखे – बिल्कुल दुरुस्त। आँखों देखीं – कोई फर्क नहीं। कान देख-सुन सकती है। हाथों को उठा और ठोंक कर देखा – कमजोर नहीं है। चलाकर देखा – पैर भी दुरुस्त हैं। पूछा – "वाशिष्ठ जी! आपकी दासी बूढ़ी तो हो गयी है। लेकिन खैर, हमारे यहाँ काम हल्का है; बतलाइये तो मूल्य क्या है?"

वाशिष्ठ – "गौतमजी, आप गलत कह रहे हैं। अभी तो यह बीस बरस की छोकरी है। आपने देखा नहीं कि इसके हाथ पैर कितने मजबूत हैं, कितनी सुन्दरी है; दस साल में दस तो इसके लड़के पैदा हो जायेंगे। दूना दाम तो एक ही लड़के से निकल आयेगा। हम आपसे मोल-भाव करना नहीं चाहते। पचास रुपया हमें मिल रहा था। खैर, आप परिचित हैं, आपको दस रुपया कम करके दे देंगे।"

गौतम – "आप तो बहुत कड़ा दाम माँग रहे हैं। बालों को काला कर देने और दो महीने के खिलाने-पिलाने से... यह न समझिये कि मैं नहीं जानता... यह पचास साल की बूढ़ी है। मुझे हल्का सौदा लेना है, यदि आप दाम-काम ठीक करें तो इसे ले लूँ।"

वाशिष्ठ – "आप मेले के दूसरे आदमियों की तरह मुझे भी समझ रहे हैं? इसी की बहन को मैंने सौ रुपये में अयोध्या के महाराज रामचन्द्र के लिए बेचा है। आजकल महाराज यज्ञ कर रहे हैं, दक्षिण में वह हर एक ऋषि को एक-एक तरुण सुन्दरी दासी देना चाहते हैं। देखा नहीं, इस साल दासियों का भाव बहुत चढ़ गया है? अच्छा जाइये, तीस ही रुपये दे दीजिये; हमें भी घर लौटने की जल्दी है। यह दासी ऐसी-वैसी नहीं है, यह खूब नाचना-गाना जानती है। काली! जरा एक गीत तो सुना दे।"

काली ने एक गीत सुनाया और नाच के भी एक-दो तर्ज दिखलाये। अन्त में पन्द्रह रुपये पर सौदा पटा।

लोग अपने-अपने दासों को घर ले जा रहे हैं। कितनी दासियों के बच्चे बिककर सैकड़ों कोस दूर पहुँच गये हैं। कितनों के प्रेमी हमेशा के लिए छूट गये हैं। बच्चों और प्रेमियों के इस बिछोह के कारण किसी काम में उनका मन नहीं लग रहा है और नये मालिक उनसे काम लेने को उकता रहे हैं। दो-चार दिन जो नरमी देखी गयी, उसे खत्म करके अब जरा-जरा-सी शिकायत पर – दासियों पर कोड़े पड़ रहे हैं। दासों की जान तक मार डालने में मालिकों को कोई जबर्दस्त सजा पाने का भय नहीं है। मालिक उनके प्रति वही खयाल रखते हैं जो कि अपने पशुओं के लिए।

यह है रामराज्य में मनुष्यों के एक भाग का जीवन! और, यह है रामराज्य में मनुष्य का मोल! इसी पर हमको नाज है! ऋषियों की दया और सहृदयता का गुण गाते तो हम थकते नहीं जिन ऋषियों के आश्रमों के आस-पास मनुष्य इस प्रकार गुलाम बनाकर रक्खे जाते थे, जिन ऋषियों को स्वर्ग, वेदान्त और ब्रह्म पर बड़े-बड़े व्याख्यान और सत्संग करने की फुर्सत थी जो दान और यज्ञ पर बड़े-बड़े पोथे लिख सकते थे, क्योंकि इससे उनको और उनकी सन्तानों को फायदा था, परन्तु मनुष्यों के ऊपर पशुओं की तरह होते इन अत्याचारों को आमूल नष्ट करने के लिए उन्होंने किसी तरह के प्रयत्न की आवश्यकता न समझी। उन ऋषियों से आज के जमाने के साधारण आदमी भी मानवता के गुण से अधिक भूषित हैं।

संस्कृति का अंग कला है। कला में हमने कहाँ तक सारे समाज का खयाल रक्खा और पुराने जमाने में भी साधारण जनता उससे फायदा उठा सकती थी? सहस्राब्दियों से संगीत राजाओं और धनियों की कामुकता को उत्तेजित करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। संगीत की रुचि मनुष्य में स्वाभाविक होती है। सभ्यता के निम्न तल पर रहने वाली जातियों से लेकर सभ्यता के उत्कर्ष की चोटी तक पहुँची हुई जातियों तक सभी में नृत्य का प्रेम देखा जाता है। लेकिन यह हमारा ही देश है जो कि सभ्य कहलाने में दुनिया के सभी देशों से अपने को पहले रखना चाहता है; लेकिन इन दोनों ललित कलाओं को ऐसी निम्न श्रेणी में डाल रक्खा है कि जिनकी दुनिया में मिसाल नहीं। इंग्लैण्ड, अमेरिका और जापान के सुशिक्षित परिवार संगीत और नृत्य-कला को अपने सभ्य जीवन का एक अंग समझते हैं, लेकिन ये चीजें हमारे यहाँ वेश्याओं के लिए रख छोड़ी गयी हैं। इस श्रेणी के कारण संगीत और नृत्य-कलाएँ सम्भ्रान्त कुल की स्त्रियों से बहिष्कृत समझी जाती हैं।

हम संस्कृत हैं, हम सभ्य हैं - इस तरह अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने से दुनिया हमें सभ्य नहीं मानेगी। हमारे जीवन का हर एक अंग जिस तरह कलुषित और दिखावट से भरा हुआ है, उस तरह की जाति दुनिया में शायद ही कोई हो। अभी तक तो हमने आदमी की तरह रहना भी नहीं सीखा। पास-पड़ोस की सफाई की अवहेलना में तो हम जानवरों से भी गये-बीते हैं। हिन्दुस्तान के गाँवों जैसे गन्दे गाँव दुनिया के किसी भी देश में खोजने से नहीं मिलेंगे। यह हमारे ही गाँव की खूबी है कि एक अन्धा आदमी भी एक मील पहले से ही हमारे गाँव को पहचान लेता है, जबकि उसकी नाक पाखाने की बदबू से फटने लगती है। सफाई के लिए अपने को लासानी समझने वाले हमारे देश के हिन्दू-मुसलमान पाखाने के लिए किसी प्रबन्ध की कोई जरूरत नहीं समझते। गाँव के पड़ोस के खेत तो इसके लिए हैं ही। कोई भी विदेशी जो एक बार हिन्दुस्तानी गाँव से गुजर जायेगा और पास के खेतों में अलग-अलग फैले हुए हवा और धूप में सूखते पाखानों को देखेगा, वह कैसे समझेगा कि हिन्दुस्तान में आदमी रहते हैं। एक बार मेरे एक जापानी मित्र को, जिनके स्नेहपूर्ण आतिथ्य को

पाने का मुझे कई दिनों तक मौका मिला था, भारत आने के लिए लिखा। उन्होंने भी यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं भारत के ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखना चाहता हूँ। मुझे पत्र पाकर यह चिन्ता हुई कि किन गाँवों में मैं अपने मित्र को ले जाऊँ। सबसे बड़ी दिक्कत मुझे पाखाने और नहाने की मालूम पड़ती थी। हिन्दुस्तान के गाँवों में खुले खेतों के अतिरिक्त पाखाने का कोई इन्तजाम नहीं। गाँव ही क्या, शहर में भी पचास हजार लगाकर महल बनाने वाले पाखाने के लिए पचास रुपये का "सेप्टिक टैंक" लगाना दण्ड समझते हैं। गुसलखाना तो अंग्रेजों और क्रिस्तानों की चीज है। मेरे तरद्दुत को देखकर एक मित्र ने अपने यहाँ खास तौर से पाखाने और गुसलखाने तैयार करने का इरादा जाहिर किया। खैर, मेरे जापानी मित्र ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। लेकिन पत्र को पाकर जिस फिक्र में मैं महीनों रहा, उससे मुझे यह तो मालूम हो गया कि हम लोग कितने पानी में हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे पूर्वजों ने स्वच्छता के लिए अत्यन्त आवश्यक इन चीजों की ओर क्यों नहीं ध्यान दिया? बल्कि जो ध्यान दिया भी है तो उल्टा; जिससे स्वच्छता में और बाधा पड़ती है। पाखाना उठानेवाले को हमारे देश में सबसे नीच समझा जाता है। अभी तो उन जातियों को हमने आर्थिक चक्की से पीस रक्खा है और पेट के आगे उन्हें इज्जत-आत्मसम्मान का खयाल ही नहीं आता। लेकिन किसी-न-किसी दिन वह आवेगा जरूर। फिर समाज की इस सबसे बड़ी सेवा के लिए सबसे जबर्दस्त लाँछना को सहने के लिए वे कैसे तैयार होंगे? और, यदि उन्होंने पाखाना साफ करना छोड़ दिया तो चन्द ही दिनों में क्या हमारे महल सूने नहीं हो जायेंगे? इंग्लैण्ड में चले जाइये, वहाँ जो व्यक्ति रसोई बनाता है, वह पाखाने में भी झाड़ू दे देता है। जापान में देखिये, वहाँ तो पाखाना बेचने वाले कितने सम्भ्रान्त व्यापारी हैं। किसी को पाखाना उठाने में घृणा नहीं है। हमारी दुनिया ही न्यारी है।

हर एक उपयोगी नयी चीज को ग्रहण करने में हम अपनी संस्कृति और सभ्यता की दुहाई देने लगते हैं। हैट, कोट, पतलून को देखकर हमारे कितने ही लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं। वित्त से अधिक खर्च करने का जहाँ तक सवाल है, वहाँ तक हम कुछ नहीं कहते; किन्तु ढीली-ढाली धोती या लम्बे-चौड़े सलवार क्या काम करने वाले आदमी के लिए उपयुक्त हो सकते हैं? अधबहियाँ कुर्ता, जाँघिया और सोला हैट (मोटा टोप) काम करने के लिए सबसे उपयुक्त पोशाक है। धूप से बचाने के लिए सोला हैट बड़े काम की चीज है। इन चीजों को पश्चिमी यूरोपीय या क्रिस्तानी कहकर हम दुत्कारते हैं। लेकिन क्या मालूम नहीं कि न ये पश्चिमी हैं, न यूरोपीय हैं और न क्रिस्तानी। दो सौ बरस पहले अंग्रेजों के पूर्वज भी सिर पर झोंटा रखते थे। उनकी पोशाक भी ऊल-जलूल थी। आधुनिक पोशाक पिछले दो सौ वर्षों के चिन्तन और परिवर्तन का परिणाम है। अभी महायुद्ध के आरम्भ तक यूरोप की स्त्रियाँ बड़े-बड़े बाल रखती थीं। उनकी पोशाक में आज से कई गुना ज्यादा कपड़ा लगता था। कमर

अस्वाभाविक तौर पर कसकर पतली बनायी जाती थी। आज यूरोप की स्त्रियों ने बाल कटा लिए हैं, उनकी पोशाक हल्की हो गयी है। कमर पतली करने की वह पुरानी सनक अब उनमें नहीं रही।

स्त्री-पुरुष का ब्याह किसलिए होता है? सन्तान ही उसमें मुख्य बात नहीं है। अव्वल तो हमारे यहाँ विवाह का भार जबर्दस्ती माँ-बाप अपने ऊपर लेना चाहते हैं। सन्तान इसमें दस्तन्दाजी न करे, इसलिए बचपन में ही विवाह कर देना चाहते हैं। यह भी हमारी संस्कृति का एक बहुत 'उज्ज्वल' अंग है कि जिन्हें सारी जिन्दगी एक-दूसरे के साथ बितानी है, उन्हें एक-दूसरे की प्रकृति और दिलचस्पी से परिचय प्राप्त करने का मौका बिना दिये हमेशा के लिए गले में बाँध दिया जाये। इस तरह की स्वेच्छाचारिता ने लाखों पारिवारिक जीवनों को नरक के रूप में परिणत कर दिया है, तो भी कोई इससे शिक्षा लेने को तैयार नहीं है। माता-पिता विवाह कर देते हैं, लेकिन विवाहित जोड़े के लिए समाज की सख्त हिदायत है कि कम-से-कम जवानी भर वे एक-दूसरे से खुले तौर पर न मिलें। दुनिया के सभी भागों में विवाहित स्त्री-पुरुष की अलग चारपाई नहीं होती। वहाँ चारपाई अलग होने का मतलब है तलाक की तैयारी। लेकिन हमारे यहाँ तो चारपाई ही अलग नहीं, सोने की जगह भी अलग होनी चाहिए और शिष्टता का तकाजा है कि पति घर वालों की जानकारी में पत्नी के पास न जाये। विवाहित पुरुष अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं रख सकता। चाहे वर्षों नौकरी या व्यापार में दूर-दूर रहना पड़े तो भी इस तरह की स्वतन्त्रता को शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है।

सारांश यह कि जिस अपने इतिहास और संस्कृति का अभिमान हम करते हैं, वह हमें साधारण मनुष्य-जैसा जीवन भी बिताने देना नहीं चाहती। खान-पान, रहन-सहन, शादी-ब्याह, स्वास्थ्य-सफाई और भाईचारा - सभी में वह हमें दुनिया की नजर में जलील बनाना चाहती है। हमारे लिए सबसे अच्छा यही है कि अपने इतिहास को फाड़कर फेंक दें और संस्कृति से अपने को वंचित समझकर दुनिया की और जातियों से फिर क, ख पढ़ना सीखें।

तुम्हारी जात-पाँत की क्षय

हमारे देश को जिन बातों पर अभिमान है, उनमें जात-पाँत भी एक है। दूसरे मुल्कों में जात-पाँत का भेद समझा जाता है भाषा के भेद से, रंग के भेद से। हमारे यहाँ एक ही भाषा बोलने वाले, एक ही रंग के आदमियों की भिन्न-भिन्न जातें होती हैं। यह अनोखा जाति-भेद हिन्दुस्तान की सरहद के बाहर होते ही नहीं दिखलायी पड़ता। और इस हिन्दुस्तानी जाति-भेद का मतलब? - धर्म और आचार पर पूरा जोर देने वाले भिन्न जाति वालों के साथ खाना नहीं खा सकते, उनके हाथ का पानी तक नहीं पी सकते, शादी का सवाल तो बहुत दूर का है। मुसलमान और ईसाई तक भी इस छूत की बीमारी से नहीं बच सके हैं - कम-से-कम ब्याह-शादी में। अछूतों का सवाल, जो इसी जाति-भेद का सबसे उग्र रूप है हमारे यहाँ सबसे भयंकर सवाल है। कितने लोग शरीर छू जाने से स्नान करना जरूरी समझते हैं। कितनी ही जगहों पर अछूतों को सड़कों से होकर जाने का अधिकार नहीं है। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें इस अन्याय के आध्यात्मिक और दार्शनिक कारण पेश करती हैं। गाँधीजी अछूतपन को हटाना चाहते हैं, लेकिन शास्त्र और वेद की दुहाई भी साथ ले चलना चाहते हैं। यह तो कीचड़-से-कीचड़ धोना है।

अछूतपन को समझना दूसरे मुल्क के लोगों के लिए कितना कठिन है। इसका मैं उदाहरण देता हूँ। 1922 में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने जब अपना साम्प्रदायिक निर्णय दिया और गाँधीजी ने उस पर आमरण अनशन शुरू किया, उस समय मैं लन्दन में था। बहुत दिनों के बाद यह सनसनीखेज खबर भारत के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड के पत्रों में छपी। उन्होंने मोटी-मोटी सुर्खियाँ देकर इसे छापा। जिन देशों में अस्पृश्यता नहीं है, वहाँ के लोग इस बारे में क्या जानें? लन्दन यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले एक चीनी छात्र हमारे पास आये और उन्होंने पूछा - "अस्पृश्यता क्या है?" मैंने कुछ समझाना चाहा। उन्होंने पूछा - "क्या कोई छूत की बीमारी होती है या कोढ़ की तरह का कोई कारण होता है जिससे कि लोग आदमी को छूना नहीं चाहते?" मैंने कहा कि आदमी स्वस्थ और तन्दुरुस्त हमारी ही तरह होते हैं, हाँ अधिकांश की आर्थिक दशा हीन जरूर होती है। मैं आध घण्टे से अधिक अस्पृश्यता के बारे में समझाने की कोशिश करता रहा, लेकिन देखा कि मेरे दोस्त के पल्ले कुछ पड़ नहीं रहा है। तब मैंने अमेरिका के नीग्रो लोगों का उदाहरण देकर समझाना शुरू किया। अब यद्यपि मैं

थोड़ा-बहुत समझाने में सफल हुआ, लेकिन तब भी वह उनकी समझ में नहीं आया कि एक ही रंग और रूप के आदमियों में अस्पृश्यता कैसी?

पिछले हजार बरस के अपने राजनीतिक इतिहास को यदि हम लें तो मालूम होगा कि हिन्दुस्तानी लोग विदेशियों से जो पददलित हुए, उसका प्रधान कारण जाति-भेद था। जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। ब्राह्मण समझता है, हम बड़े हैं, राजपूत छोटे हैं। राजपूत समझता है, हम बड़े हैं, कहार छोटे हैं। कहार समझता है, हम बड़े हैं, चमार छोटे हैं। चमार समझता है, हम बड़े हैं, मेहतर छोटे हैं और मेहतर भी अपने मन को समझाने के लिए किसी को छोटा कह ही लेता है। हिन्दुस्तान में हजारों जातियाँ हैं। और सबमें यह भाव है। राजपूत होने से ही यह न समझिए कि सब बराबर है। उनके भीतर भी हजारों जातियाँ हैं। उन्होंने कुलीन कन्या से ब्याह कर अपनी जात ऊँची साबित करने के लिए आपस में बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं और देश की सैनिक शक्ति का बहुत भारी अपव्यय किया है। आल्हा-ऊदल की लड़ाइयाँ इस विषय में मशहूर हैं।

इस जाति-भेद के कारण देश-रक्षा का भार सिर्फ एक जाति के ऊपर रख दिया गया था। जहाँ देश की स्वतन्त्रता के लिए सारे देश को कुर्बानी के लिए तैयार रहना चाहिए, वहाँ एक जाति के कन्धे पर सारी जिम्मेदारी दे देना बड़ी खतरताक बात थी। राजपूत जाति ने जहाँ तक सैनिक उत्साह का सम्बन्ध है, अपने को अयोग्य नहीं साबित किया, तो भी सिर्फ देश-रक्षा की बात नहीं रह गयी, वहाँ तो उसके साथ-साथ राजशक्ति का प्रलोभन भी उनमें बहुत बड़ा था और इसी के लिए आपस में वे बराबर लड़ने लगे। उनके सामने मुख्य बात थी खास-खास राजवंशों की रक्षा करना। राजवंशों के पारस्परिक वैमनस्य - जो कि राजशक्ति को हथियाने के कारण ही था - उन्होंने राष्ट्रीय सैनिक-शक्ति को अनेकों टुकड़ों में बाँट दिया और वे एकसाथ होकर विदेशियों से न लड़ सकी। यदि जात-पाँत न होती तो और मुल्कों की तरह सारे हिन्दुस्तानी देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते। जातीय एकता के कारण छोटे-छोटे मुल्क बहुत पीछे तक अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में समर्थ हुए। इतना भारी देश हिन्दुस्तान जबकि बारहवीं शताब्दी में ही परतन्त्र हो गया, लंका (सीलोन) का छोटा टापू जिसकी आबादी अब भी पचास लाख के करीब है - 1814 तक परतन्त्र न हुआ था। बर्मा तो उससे साठ-बरस और पीछे तक आजाद रहा है। हिन्दुस्तान के पड़ोस के इतने छोटे-छोटे मुल्क इतने दिनों तक अपनी स्वतन्त्रता को क्यों कायम रख सके, और आज भी अफगानिस्तान जैसे देश क्यों आजाद हैं। इसलिए कि वहाँ जाति इतने टुकड़ों में विभक्त नहीं है। वहाँ ऊँच-नीच का भाव इतना नहीं फैला है और देश के सभी निवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए क्षत्रिय बनकर कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ सकते हैं।

हिन्दुस्तान के इतिहास में कई बार ऐसा समय आया जबकि देश की स्वतन्त्रता फिर लौटी आ रही थी। लेकिन हमारी पुरानी आदतों ने वैसा होने नहीं दिया। शेरशाह के वंश के राजमन्त्री बहादुर हेमचन्द्र ने एक बार चाहा क्या, दिल्ली के तख्त पर बैठ भी गया, लेकिन राजपूतों ने बनिया कहकर उसका विरोध किया। दूरदर्शी सम्राट अकबर ने सारे भारत को एक जाति में लाने का स्वप्न देखा, लेकिन उसका वह स्वप्न, स्वप्न ही रह गया। और उसके बाद के हिन्दू-मुसलमानों ने कभी उस जातीय एकता के खयाल को फूटी आँखों देखना पसन्द नहीं किया। अंग्रेजों के हाथ में जाने से पहले भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य मराठों का था, लेकिन वह भी ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़ों के कारण चूर-चूर हो गया। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे।

आधी शताब्दी से अधिक बीत गयी जबसे कांग्रेस ने जातीय एकता कायम करने का बीड़ा उठाया। जो कुछ थोड़ी-बहुत एकता कायम करने में वह सफल हुई है, उसका फल भी हम देख रहे हैं और दो प्रान्तों को छोड़कर बाकी सभी प्रान्तों के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में है। (सिन्ध की सरकार भी कांग्रेस के प्रभाव को मानती है)। लेकिन कांग्रेस के नेताओं के मनोभाव को हम क्या देख रहे हैं? कांग्रेस के बड़े-बड़े हिन्दू जहाँ एक तरफ जातीय एकता के शोर से जमीन-आसमान एक करते रहते हैं, वहाँ दूसरी तरफ "भारतीय संस्कृति" और हिन्दू-धर्म के प्रेम में किसी से एक इंच भी कम नहीं रहना चाहते। और इसी कारण वे अपने-अपने छोटे-से जातीय दायरे से जरा भी बाहर निकलने की हिम्मत नहीं रखते। कायस्थ कांग्रेस नेता कायस्थ जाति की एकता और उसके अगुवापन की परवाह बहुत ज्यादा रखते हैं। जब उनका ब्याह-शादी या जन्म-मरण अपनी ही जाति के भीतर होने वाला है तो उनकी तो दुनिया ही कायस्थों के भीतर है। कायस्थ रिश्तेदार को - चाहे वह योग्य हो या अयोग्य, उसके और उसके परिवार के लिए कोई जीविका का प्रबन्ध करना तो जरूरी है - कोई नौकरी दिलानी ही होगी और ऐसे जाति भक्त के काम के लिए कोई भी अन्याय, अन्याय नहीं; पाप, पाप नहीं। भूमिहार कांग्रेस-नेता है। जब तक भूमिहार जाति से अलग उसका नाता-रिश्ता नहीं, तब तक वह कैसे भूमिहार से बाहर की दुनिया को अपनी दुनिया समझेगा? हमारे नेताओं में जातीयता के ये भाव कितने जबर्दस्त हैं, यह सभी जानते हैं। इस भाव के कारण हमारा सार्वजनिक जीवन बहुत गन्दा हो गया है और राष्ट्रीय शक्ति सबल नहीं होने पाती। राजनीतिक दल तो पहले से ही हैं, इसमें जातीय दलबन्दी अवस्था को और भी भयंकर बना देती है। यह जाति-भेद सिर्फ हिन्दुओं के ही राजनीतिक नेताओं में नहीं, बल्कि मुसलमान और दूसरे भी इससे बचे नहीं हैं। मुसलमानों के ऊँची-जाति के नेताओं के स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण वहाँ भी मोमिन और गैर-मोमिन का सवाल छिड़ गया है, यद्यपि मुस्लिम नवाबों और सेठ-साहूकारों की बराबर कोशिश हो रही है कि बाजा

और गोकशी का सवाल रखकर निम्न श्रेणी के लोगों को उस प्रश्न से अलग रक्खा जाय। लेकिन निश्चय ही इसमें असफलता होगी। राष्ट्रीय नेता की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए। उनका अध्ययन और अनुभव विस्तृत होता है; और इस प्रकार वह भविष्य पर दूर तक सोच सकता है। लेकिन, उसकी यह शोचनीय मनोवृत्ति है। बिहार प्रान्त के कांग्रेसी नेताओं और मिनिस्टरों के इस जात-पाँत के भाव ने बड़ा ही घृणित रूप धारण कर लिया है। मिनिस्टर अपनी जाति के मेम्बरों की ठोस जमात अपने पीछे रखकर उसी दृष्टि से काम करते हैं; और, अवस्था यहाँ तक पहुँच गयी है कि यदि दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं हुआ तो सार्वजनिक जीवन की गन्दगी पराकाष्ठा को पहुँच जायेगी।

ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ से फैलायी गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे खयाल है धन को बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर खयाल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।

संसार की रविश हमें बतला रही है कि हम अधिक दिनों तक इस जातीय भेदभाव को कायम नहीं रख सकते। दुनिया की चाल को देखकर अब हिन्दुस्तान के अछूत अछूत रहने को तैयार नहीं हैं - अर्जल (निम्न जाति) अर्जल रहने को तैयार नहीं है। अछूत और अर्जल बनाये रखकर सिर्फ उनके साथ अपमानपूर्ण बर्ताव ही नहीं किया जाता, बल्कि आर्थिक स्वतन्त्रता से भी उन्हें वंचित किया जाता है। फिर वे कब समाज में सहस्राब्दियों से पहले निर्धारित किये स्थान पर रहना पसन्द करेंगे और आजादी के दीवाने तो इस प्रथा के विरुद्ध जेहाद बोल चुके हैं। वे इसके लिए सब तरह की कुर्बानियाँ करने को तैयार हैं। उनके लिए राजनीतिक युद्ध से यह सामाजिक युद्ध कम महत्त्व नहीं रखता। वे जानते हैं कि जब तक जातियों की खाइयाँ बन्द न की जायेंगी, तब तक जातीय एकता की ठोस नींव रक्खी नहीं जा सकती। वे जानते हैं कि इस बात में मजहब उनका सबसे बड़ा बाधक है, लेकिन वे मजहब की परवाह कब करने वाले हैं। वे जात-पाँत के साथ हिन्दू धर्म को एक ही डण्डे से मारकर समुद्र में डुबायेंगे।

देखने में जात-पाँत की इमारत मजबूत मालूम होती है, लेकिन इससे यह न समझना चाहिए कि उसकी नींव पर करारी चोट नहीं लग रही है। जातीय भेद के दो रूप हैं - एक, रोटी में छूत-छात, दूसरे, बेटी में असहयोग। रोटी में छूत-छात की बात उन्हीं धनिकों ने सबसे पहले तोड़नी शुरू की जो अपने स्वार्थ को अक्षुण्ण रखने के लिए जातीय संगठनों और जातीय एकताओं के सबसे बड़े पोषक थे। धन उनके पास था और विलायत जाने के लिए सबसे पहले वे ही तैयार हुए। जहाँ पहले विलायत

जाने वाले जात से बहिष्कृत किये जाते थे, वहाँ आज वे ही जात के चौधरी हैं। दरभंगा बीकानेर को ही नहीं, दूसरी जातियों के अगुवों को भी देख लीजिये। सभी जगह विलायत में सब तरह के लोगों के साथ, सब तरह का खाना खाकर लौटे हुए लोग ही आज नेता के पद पर शोभित हैं। आई.सी.एस. दामाद पाने वाला ससुर अपने को निहाल समझता है।

पिछले बीस बरसों से रोटी की एकता बड़ी तेजी के साथ कायम हो रही है। 1921 से पहले हिन्दू होटल शायद ही कहीं दिखलायी पड़ते थे। लेकिन आज छोटे-छोटे शहरों में ही चार-चार, छै-छै दर्जन होटल नहीं हैं, बल्कि छोटे-छोटे स्टेशनों पर खुल गये हैं। कुछ साल पहले तक किसको पता था कि छपरा स्टेशन के प्लेटफार्म पर हिन्दू खोमचा वाला गोश्त-पराठे बेचता फिरेगा। मेरे एक दोस्त एक दिन पटने में किसी होटल में भोजन करने गये। उनकी क्यारी की बगल में एक लड़का बैठा था और उसकी बगल में एक तिरहुतिये ब्राह्मण चन्दन-टीका लगाकर बैठे थे। क्यारी छोटी थी और लड़के का हाथ ब्राह्मण देवता के शरीर से छू गया। वह उस पर आग बबूला हो गये, डाँटकर जात पूछने लगे। हमारे साथी ने लड़के को चुपके से समझा दिया - कह दो रैदास भगत (चमार)। लड़के ने जब ऐसा कहा तो ब्राह्मण का कौर मुँह का मुँह में ही रह गया। वह अभी बोलने को कुछ सोच ही रहे थे कि आसपास के लोग उन पर बिगड़ उठे - यह होटल है, यहाँ दाल-भात की बिक्री होती है। तुमने जात-पाँत क्यों पूछी? ब्राह्मण देवता को लेने के देने पड़ गये। यदि खाना छोड़कर जाते हैं, तो यही नहीं कि पैसे दण्ड पड़ेंगे, बल्कि सब लोगों का खुलकर हँसी उड़ाने का मौका मिलेगा। इसलिए बेचारे ने सिर नीचा करके चुपचाप भोजन कर लिया।

रोटी की छूत का सवाल हल-सा हो चुका है। शिक्षित तरुण इसमें हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव नहीं रखना चाहते। लेकिन बेटी का सवाल अब भी मुश्किल मालूम पड़ता है। एक दिन रेल में सफर करते मुझे एक मुसलमान नेता मिले। वह समाजवादियों के नाम से हद से ज्यादा घबराये हुए थे। बोले "समाजवादी, खैर, लोगों की गरीबी दूर करना चाहते हैं, इस्लाम भी मसावात (समानता) का प्रचारक है, लेकिन वे मजहब के खिलाफ क्यों हैं?"

मैं - "साम्यवादी मजहब के खिलाफ अपनी शक्ति का तिल भर भी खर्च करना नहीं चाहते। वे तो चाहते हैं कि दुनिया में सामाजिक अन्याय और गरीबी न रहने पाये।"

मौलाना - "इसमें हम भी आपके साथ हैं।"

मैं - "आप भी साथ हैं? क्या आप सारे हिन्दुस्तानियों की रोटी-बेटी एक कराने के लिए तैयार हैं?"

मौलाना - "इसकी क्या जरूरत है?"

मैं - "क्योंकि गरीब तब तक आजादी हासिल नहीं कर सकते, तब तक अपनी कमाई स्वयं खाने का हक पा नहीं सकते, जब तक कि वे एक होकर अपने चूसने

वालों – चाहे वे देशी हों या विदेशी – का मुकाबला करके उन्हें परास्त नहीं करते।"

मौलाना – "रोटी तक तो हम आपके साथ हैं, लेकिन बेटी में नहीं।"

पास ही एक पण्डित जी बैठे हुए थे जो बातचीत से वकील मालूम होते थे। वह झट बोल उठे – "आप लोग तो दूसरे मुल्कों के साँचे में हिन्दुस्तान को भी ढालना चाहते हैं। आप लोग यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करते कि हिन्दुस्तान धर्म-प्राण मुल्क है, इसकी सभ्यता और संस्कृति निराली है। भारत यूरोप नहीं हो सकता। रोटी की तो बात, खैर, एक होती देखी जा रही है; लेकिन बेटी एक होने की बात कहकर तो आप शेखचिल्ली को भी मात करते हैं।"

मैं – "कुछ बरसों पहले रोटी की एकता भी शेखचिल्ली की ही बात थी। खैर, आज आप उसे तो कबूल करते है न? बेटी की भी बात शेखचिल्ली की नहीं। बीस बरस पहले के चौके-चूल्हे को देखकर किसको आशा थी कि हमें आज का दिन देखना पड़ेगा? हिन्दू खुल्लम-खुल्ला मुसलमान और ईसाई के साथ खाना खाते हैं, लेकिन बिरादरी की मजाल है कि उनसे नाता-रिश्ता तोड़ें? हिन्दू-मुसलमान की शादियाँ होनी शुरू हो गयी हैं। पण्डित जवाहरलाल की भतीजी ने मुसलमान से शादी की है और बिना कलमा पढ़े। आसफ अली की बीवी अरुणा ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया। प्रोफेसर हुमायूँ कबीर ने भी इसी तरह की शादी बंगाल में की है। ऐसी मिसालें दर्जनों मिलेंगी जिनमें हिन्दू युवतियों ने बिना मजहब बदले शादियाँ की हैं। हिन्दू नवयुवक भी धर्म की जंजीर तोड़कर शादी करने लग गये हैं। गोरखपुर के श्री श्यामाचरण शास्त्री ने बिना शुद्धि के मुसलमान लड़की से शादी की है। गुजरात के एक सम्भ्रान्त कुल के हिन्दू युवक ने एक प्रतिष्ठित मुसलमान-कुल की सुशिक्षिता लड़की से शादी की है। यह निश्चित है कि दिन-प्रतिदिन ऐसे ब्याहों की संख्या बढ़ती ही जायेगी। समाज के जबर्दस्त बाँध में जहाँ सुई भर का भी छेद हो गया, वहाँ फिर उसका कायम रहना मुश्किल है।"

जात-पाँत तोड़कर एक धर्म के भीतर शादियाँ तो और ज्यादा हैं। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य है कि जिस काम को अवश्य करना है, उसे भी लोग बहुत धीमी चाल से करना चाहते हैं। ठोस जातीय एकता हमारे लिए सबसे आवश्यक चीज है और वह मजहबों और जातों की चहारदीवारियों को ढहाकर ही कायम की जा सकती है। हमारी रविश जिस बात को अवश्यम्भावी बतला रही है जिसे किये बिना हमारे लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं; उसके करने में इतनी ढिलाई दिखलाना क्या सरासर बेवकूफी नहीं है?

हिन्दुस्तानी जाति एक है। सारे हिन्दुस्तानी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बौद्ध हों या ईसाई, मजहब के मानने वाले हों या लामजहब; उनकी एक जाति है – हिन्दुस्तानी, भारतीय। हिन्दुस्तान से बाहर यूरोप और अमेरिका में ही नहीं, पड़ोस के ईरान और अफगानिस्तान में भी हम इसी – हिन्दी – नाम में पुकारे जाते हैं। हिन्दू

सभा वाले अपने भीतर की जातियों को तोड़ने के लिए चाहे उतना उत्साह न भी दिखलाते हों, लेकिन वे मौके-बे-मौके यह घोषणा जरूर कर दिया करते हैं कि हिन्दू जाति अलग है। मुस्लिम लीग ने तो बीड़ा उठाया है कि मुसलमानों की हमेशा के लिए अलग जाति बनायी जाये। वह तो बल्कि इसी विचार के अनुसार हिन्दुस्तान को अलग हिस्सों में बाँटना चाहती है। नौ करोड़ मुसलमानों में सात करोड़ तो सीधे ही वह खून अपने शरीर में रखते हैं जो कि हिन्दूओं के बदन में है। और, बाकी दो करोड़ में कितने हैं जो कलेजे पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि उनमें चौथाई भी गैर-हिन्दुस्तानी खून है? जाति का निर्णय खून से होता है। और, इस कसौटी से परखने पर दुनिया का कोई भी आदमी - हिन्दुस्तान से बाहर - हिन्दुस्तान के मुसलमानों को अलग कौम मानने को तैयार नहीं हो सकता। तीन-चौथाई अरबी शब्द बोलकर हिन्दुस्तानी मुसलमान न अरब में जाकर हिन्दी छोड़कर दूसरा कहला सकता है और न अरबी जबान को वह अपनी मातृभाषा ही बना सकता है हमारे नौजवान इस बँटवारे को अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकते। नयी सन्तानों के लिए तो अच्छा होगा कि हिन्दूओं की औलाद अपने नाम मुसलमानी रक्खे, और मुसलमानों की औलाद अपने नाम हिन्दू रक्खे; साथ ही मजहबों की जबर्दस्त मुखालफत की जाये। सूरत-शकल के बनावटी भेद को भी मिटा दिया जाये। इस प्रकार मजहब के दीवानों को हम अच्छी तालीम दे सकते हैं।

निश्चय है कि जात-पाँत की क्षय करने से हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

तुम्हारी जोंकों की क्षय

जोंकें? – जो अपनी परवरिश के लिए धरती पर मेहनत का सहारा नहीं लेतीं। वे दूसरों के अर्जित खून पर गुजर करती हैं। मानुषी जोंकें पाशविक जोंकों से ज्यादा भयंकर होती हैं। इन्होंने मानव-जीवन को कितना हीन और संकटपूर्ण बना दिया, इसका जिक्र कुछ पहले हो चुका था और आगे भी कुछ करेंगे। इन जोंकों की उत्पत्ति कैसे हुई? आरम्भिक मनुष्य असभ्य था, वह जंगल में रहता था। लेकिन अपनी जीविका वह धरती में खोजता था। वह शिकार करता था। वह जंगल में फल तोड़ता था, लेकिन दूसरे की कमाई, दूसरे के खून को चूसकर गुजारा करना पसन्द नहीं करता था। आत्मरक्षा के लिए वह अपना नेता भी बनाता था। समाज का साधारण संगठन भी करता था। लेकिन चूसने वाले के लिए वहाँ स्थान न था। शिकारी अवस्था से मनुष्य पशुपालक की अवस्था में आया। अब भी उनके नायक और शासक खुद अपनी भेड़ और गायें रखते थे। हाँ, अब कभी-कभी एक-आध भेड़-गाय उनके पास पहुँचने लगी और इस प्रकार बहुत हल्के रूप में मानुषी जोंकों का आविर्भाव हुआ। कृषक की अवस्था में पहुँचने पर नेता और शासकों का प्रभाव और बढ़ा। उन्होंने राजा का रूप धारण करना शुरू किया। यद्यपि पहले समाज की आत्मरक्षा के लिए शस्त्र और शासन की सुव्यवस्था का भार उन पर सौंपा गया था और उनका पद तभी तक सुरक्षित था जब तक कि उन कार्यों के संचालन की योग्यता उनमें मौजूद रहती। योग्यता द्वारा निर्वाचित राजा भेंट और कर में अधिक धन एकत्र करने में सफल हुआ और इस प्रकार योग्यता के अतिरिक्त धन की शक्ति उसके हाथ आयी। अब जहाँ वह अपने शासक और नेता होने के जरिए लोगों पर प्रभाव डालता था, वहाँ धन का प्रलोभन देकर के भी कुछ लोगों को अपनी ओर खींच सकता था। इस तरह वह जहाँ कितने ही अत्याचार भी करने का साहस रखता था, वहाँ साथ ही यह भी कोशिश करने लगा कि उसके बाद उसका स्थान उसके लड़के को मिले। शताब्दियों के प्रयत्न से योग्यता का सबब भाड़ में चला गया और राजा की ज्येष्ठ सन्तान राजा बनने लगी। सम्पूर्ण राज-परिवार का खर्च दूसरों के ऊपर लदने लगा। इन जोंकों ने यही नहीं कि अपनी परिवरिश दूसरों की कमाई से चलानी शुरू की, बल्कि कितने ही धरती से धन उपजाने वाले को भी नौकर-परिचारक रखकर समाज को उनके श्रम से वंचित रखा। खानदानी राजा तब तक इस प्रकार शोषण, निठल्लापन और अपनी

वासना-तृप्ति के लिए तरह-तरह की गन्दगी फैलाते रहते जब तक कि जनता को ऊबते देखकर कोई सेनापति या मन्त्री राजा का वध कर नये राजवंश की नींव नहीं डालता। जब से राजा अधिक सम्पत्ति का स्वामी और गैर-जवाबदेह शासक बनने लगा, तब से 'यथा राजा तथा प्रजा' का अनुकरण करते हुए कितने ही लोग स्वयं भी जोंक बनकर आराम से सुख और चैन की जिन्दगी बसर करने लगे। राजा भी प्रलोभन दे-देकर उन्हें इसके लिए उत्साहित करते थे। धरती से धन पैदा करने वाले का स्थान समाज में बहुत नीचा हो गया था और राजा, राजकुमार, पुरोहित, मन्त्री, सामन्त ही नहीं, बल्कि उनके परिचारक भी धन कमाने वालों से अधिक सम्मानित समझे जाते थे। शारीरिक श्रम को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। अब जोंकों की एक और श्रेणी भी पैदा हो गयी जो कारीगरों और किसानों द्वारा उत्पादित चीजों के क्रय-विक्रय का काम करती थी। इन साधारण बनियों ने लाभ-वृद्धि के साथ-साथ अपने काम को भी अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित किया। इनके बड़े-बड़े दल (कारवाँ) देश के एक कोने की चीज दूसरे कोने में पहुँचाते और आँख मूँदकर नफा कमाते थे। राजा, राजकुमारों के बाद अपनी राज-सेवा के उपहार में जिन मन्त्रियों और सेनानायकों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिलीं, वे भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे, और उनके बाद नम्बर था बनियों का। समाज में अब भी पुराना भाव कभी-कभी मौज मारता था जबकि किसान की कमाई को सबसे शुभ कमाई समझा जाता था। राजचाकरी और वाणिज्य को निम्न श्रेणी की जीविका मानते थे, लेकिन दुनिया का सुख और वैभव तो उसी के लिए है जिसके पास धन है, चाहे वह धन किसी भी तरह प्राप्त किया गया हो। राजकार्य और व्यापार की तो बात ही क्या, सूद के लाभ - जिसे कि पाप का धन अभी हाल तक समझा जाता रहा है - को भी कोई छोड़ने के लिए तैयार न था। सामन्त दासों और अर्द्ध-दास किसानों की पलटन से खेती कराते तथा कारीगरों से बेगार में चीजें तैयार कराते। व्यापारी स्थल और जलमार्ग से व्यापार ही नहीं करते थे, बल्कि कभी-कभी कुछ कारीगरों को जमा कर उनसे वाणिज्य की कितनी ही चीजें भी बनवाते थे। बिना मेहनत की कमाई अब सबसे इज्जत की कमाई हो गयी थी। और क्यों न हो, जब कि हजारों बरस से पुरोहित लोग खुद इस लूट के नफे से मौज करते आ रहे थे। उन्हीं के हाथ में भले-बुरे की व्यवस्था थी।

बढ़ते-बढ़ते अवस्था जब यहाँ तक पहुँची तो समझा जाने लगा कि राजा अपनी पुरानी तपस्या का उपभोग करने या खुदा की न्यामत को हासिल करने के लिए धरती पर आया है, तब बहुत हुआ तो राजवंश के संस्थापक प्रथम व्यक्ति ने कुछ योग्यता का परिचय दिया और उसके उत्तराधिकारी - चाहे योग्य हो या अयोग्य, सिर्फ भोग-विलास के लिए राजसिंहासन पर बैठते थे। मुफ्त के भोग-विलास को देखकर किसके मुँह में पानी न भर आता। और उसके लिए जब राजा लोग आपस में लड़ने लगते, तो योग्य सेनानायकों का महत्त्व बढ़ना जरूरी था। फिर उनकी जागीरें बढ़ीं और हालत यहाँ

तक पहुँची कि राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो गया।

शिकार और कृषि के साथ पहले जोंकों का जन्म होता है। राजशाही युग में उनकी संख्या कुछ बढ़ती है और राजकुमार, राजकर्मचारी, व्यापारी तथा इनके परिचारक जोंकों की श्रेणी में शामिल होकर संख्या को और बढ़ा देते हैं। जब राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं, तब सामन्तों की स्वेच्छाचारिता का पृष्ठपोषण करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं – ऐसी सामन्तशाही के युग में जोंकों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है। इस युग का अन्त होने के समय यूरोप के बनियों को अपना प्रभाव बढ़ाने का नया मौका मिलता है। "वाणिज्ये बसते लक्ष्मी:" की कहावत प्रसिद्ध ही है। इंग्लैण्ड के व्यापारी भी पुर्तगाल, स्पेन आदि के व्यापारियों की देखादेखी दुनिया के दूर-दूर देश में व्यापार करने लगे। इंग्लैण्ड में उनके पास अपार सम्पत्ति जमा होने लगी। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में व्यापार के सम्बन्ध में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगी, तो भी धरती का बहुत-सा हिस्सा अछूता था और सभी साहसियों के लिए कहीं न कहीं काम का क्षेत्र मौजूद था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के व्यापारियों में अंग्रेजों ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। उनके पास दुनिया में सबसे अधिक बाजार थे। उनके माल से भरे जहाज इंग्लैण्ड से बाजारों को और बाजारों से इंग्लैण्ड को छह-छह महीने चलकर पहुँचाते थे। उस समय की लकड़ी को नावों – जिन्हें पाल और पतवार के सहारे एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था – में यात्रा बड़ी संकट की थी, लेकिन अपार नफे के सामने संकट क्या चीज थी। व्यापारियों को सबसे अधिक चिन्ता थी – अधिक से अधिक परिमाण में माल कैसे तैयार हो। इसी समय इंग्लैण्ड में इंजिन का आविष्कार हुआ। भाप से चालित यन्त्र अधिक परिमाण में और ज्यादा तेजी के साथ माल तैयार करने लगा। इंजिनों को रेल और जहाज में लगा देने पर लम्बी-लम्बी यात्राएँ भी छोटी हो गयीं और खतरा तथा परतन्त्रता भी कम होती गयी।

यन्त्रों के आविष्कार से, उनके द्वारा बनी चीजों की अपेक्षा हाथ की बनी चीजें महँगी पड़ने लगीं और हाथ के कारीगर बेकार होने लगे। बेकारी से कुपित होकर कारीगरों ने कितने ही कारखानों को तोड़ा, जगह-जगह बलवे हुए। लेकिन अब व्यापारियों की शक्ति साधारण नहीं रह गयी थी। धन के कारण राजदरबारों में उनका प्रभाव और सम्मान सामन्तों की तरह होने लगा था और धन के बल पर शासन-तन्त्र पर वह अपना अधिकार जमा रहे थे। जिस यन्त्रचालित कारखानेदार – पूँजीपति के पीछे राजशक्ति थी, उसका मुकाबला ये कारीगर क्या करते? धीरे-धीरे उनके बलवे तो ठण्डे पड़ गये जिसमें दमन के अतिरिक्त एक यह भी कारण था कि यान्त्रिक कारखाने मुख्यत: इंग्लैण्ड में ही स्थापित हुए थे और इंग्लैण्ड के पास सारी दुनिया का बाजार पड़ा हुआ था। इस प्रकार वहाँ के पूँजीपति सभी कारीगरों को बेकार न करके उन्हें नये-नये कारखानों में लगाते जाते थे। जैसे ही जैसे व्यापार चमकता गया

वैसे ही वैसे पूँजीपतियों के पास अपार धनराशि जमा होती गयी। वहाँ का राज शासन भी पूँजीपतियों के हाथ चला गया और राजशाही या सामन्तशाही सरकार की जगह पूँजीवादी सरकार स्थापित हुई। इसका पवित्र कर्तव्य था पूँजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करना।

इस नयी आर्थिक व्यवस्था से संसार में तरह-तरह की उथल-पुथल होने लगी। देश के श्रमिक पूँजीपतियों के अर्थदास बनने लगे। जिन देशों पर पूँजीवादियों का शासन था, वहाँ पर भी उसी स्वार्थ को सामने रखकर काम लिया जाने लगा। इंग्लैण्ड में सामन्तशाही का स्थान पूँजीशाही ने लिया था, किन्तु हिन्दुस्तान में उस वक्त तक सामन्तशाही ही चल रही थी। तो भी अंग्रेजी पूँजीशाहों ने अपने देश की तरह हिन्दुस्तान से सामन्तशाही को लुप्त होने नहीं दिया। उसी का परिणाम है कि यद्यपि सारे भारतवर्ष पर अंग्रेजी पूँजीशाही का शासन है तो भी भीतर में सामन्तशाही को रियासतों और बड़ी-बड़ी जमींदारियों के रूप में कायम रखा गया है। पूँजीवाद मनुष्यों को अर्थदास बनाता है और बराबर बेकारी पैदा करके उन्हें नरक की यातना में ढकेलता है, यह बात तो अब स्पष्ट हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक बाजारों और साम्राज्य के विस्तार के लिए आपस में लड़ती यूरोप की राजशक्तियों ने यह भी दिखला दिया था कि पूँजीवाद युद्धों का प्रधान कारण है।

इसी समय जर्मनी में एक विचारक पैदा हुआ जिसका नाम था कार्ल मार्क्स। उसने बतलाया कि बेकारी और युद्ध पूँजीवाद के अनिवार्य परिणाम रहेंगे बल्कि जितना ही पूँजीवाद की संरक्षकता में यन्त्रों का प्रयोग बढ़ता जायेगा, बेकारी और युद्ध उतना ही भयानक रूप धारण करते जायेंगे - उसने इससे बचने का एक ही उपाय बतलाया - साम्यवाद। जर्मनी, फ्रांस - जहाँ भी उसने अपने इन विचारों को प्रकट किया, वहाँ की सरकारें उसके पीछे पड़ गयीं। पूँजीपति समझ गये कि साम्यवाद उनकी जड़ काटने के लिए है। उसमें तो सारी सम्पत्ति का मालिक व्यक्ति न होकर समाज रहेगा। उस वक्त हर एक को अपनी योग्यता के मुताबिक काम करना पड़ेगा और आवश्यकता के मुताबिक जीवन-सामग्री मिलेगी। सबके लिए उन्नति का मार्ग एक-सा खुला रहेगा। कोई किसी का नौकर और दास नहीं रहेगा। भला धनी इसे कब पसन्द करने वाले थे? लेकिन अभी तक मार्क्स के विचार सिर्फ हवा में गूँज रहे थे। मजदूरों पर उनका असर बिलकुल हल्का-सा पड़ रहा था, इसलिए पूँजीवादियों का विरोध तेज न था - खास करके जबकि उन्होंने देखा कि एक समय के आग उगलने वाले प्रलोभनों को हाथ में आया पाकर वे पूँजीवाद के सहायक बन सकते हैं। दुनिया की जोंकों ने समझा कि साम्यवाद हमेशा हवा और आसमान की चीज रहेगा और उसे कभी ठोस जमीन पर उतरने का मौका नहीं मिलेगा।

पूँजीवाद धीरे-धीरे हर मुल्क में बढ़ रहा था। यूरोप में तो उसकी गति बड़ी तेज थी। अन्त में सिपाहियों का देश जर्मनी भी उसकी बाढ़ से न बच सका। बल्कि

प्रतिभाशाली जर्मनों ने यन्त्रों के आविष्कार और प्रयोग में और भी अधिक योग्यता दिखलायी। पूँजीवादी सरकारों ने दाँव-पेंच लगाकर दुनिया के हिस्से-बखरे कर लिये। जर्मनी ने देखा कि उसके लिए तो कहीं जगह नहीं। इसके लिए उसने वर्षों की तैयारी की, क्योंकि वह जानता था कि हथियार के बल पर उसे नया बाजार मिल सकता है। इसी आकांक्षा, इसी तैयारी का परिणाम था 1914 ई. का महायुद्ध। पूँजीवादी फैक्टरियों में गरीबों का खून चूसकर तृप्त न थे। वे बाजार और नफा लूटने के लिए बड़े पैमाने पर नर-संहार करना चाहते थे। जो कहते हैं कि महायुद्ध आस्ट्रिया के युवराज की हत्या के कारण हुआ था, वे या तो भोले-भाले हैं या जान-बूझकर झूठ बोलते हैं। युद्ध हुआ था जोंकों की खून की प्यास के कारण। जर्मनी की जोंकें परास्त हुईं। फ्रांस और इंग्लैण्ड की जोंकें विजयी। इन जोंकों की लड़ाई में एक फायदा हुआ कि दुनिया के छठे हिस्से – रूस से जोंकों का राज उठ गया। अब वहाँ ईमानदारी से कमाकर खाने वालों का राज है। आरम्भ में दुनिया की जोंकों ने पूरी कोशिश की कि वहाँ साम्यवादी शासन न होने पाये। लेकिन रूस के मजदूरों और किसानों ने हर तरह की कुर्बानी करके, जान पर खेलकर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की। लेनिन के नायकत्व में संस्थापित रूस की साम्यवादी सरकार आज दुनिया की जोंकों की आँखों में काँटे की तरह चुभ रही है। सारा पूँजीवादी जगत देख रहा है कि दुनिया के सभी मजदूर-किसान रूस की तरफ स्नेह भरी निगाह से देखते हैं और उससे अन्त:प्रेरणा ले रहे हैं।

महायुद्ध के अन्त में जोंकों की रक्तपिपासा के नंगे नाच को देखकर तथा रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर यूरोप के कितने ही देशों के मजदूरों में साम्यवाद का जोर बढ़ा। सामग्री तैयार थी, उसका उपयोग करके वहाँ भी साम्यवादी शासन स्थापित करने के लिए। लेकिन श्रमजीवियों का नेतृत्व जिन कमजोर दिलवाले शिक्षितों के कन्धों पर था, उन्होंने अपनी कायरता और कमजोरी को जनता के मत्थे मढ़ा और इस प्रकार श्रमजीवी-जागृति का वह वेग विशृंखलित हो गया। पूँजीपति महत्त्वाकांक्षी साम्यवादी नेताओं – जो कि आपस में होड़ और अनबन के कारण अपने लिए किसी बड़ी चीज की आशा न रखते थे – को आसानी से अपनी ओर मिला सकते थे, इसके लिए सिर्फ दो चीजों की जरूरत थी। एक तो आदर्श-द्रोही नेता को नेतृत्व दे दिया जाये और इसमें पूँजीवाद को कोई नुकसान तो था नहीं, दूसरे, उसी थैली से मदद दी जाये और यह बात भी पूँजीपतियों के लिए कड़वी नहीं थी, क्योंकि उनके हाथ से सारी की सारी थैली को मजदूर छीन लेने वाले थे। इस प्रकार पूँजीवाद ने नया रूप – 'फासिज्म' धारण किया। उसने असली उद्देश्य को छिपाकर सामन्तशाही के विनाशक पूँजीवाद के हथकण्डे इस्तेमाल किये और राष्ट्रीयता के नाम पर जनता को अपने झण्डे के नीचे एकत्रित होने के लिए आवाहन किया। वर्षों से मजदूर और किसान अपने शिक्षित मध्यम श्रेणी के साम्यवादी नेताओं की कायरता और विश्वास

से तंग आ गये थे। उन्होंने फासिज्म को राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का सन्देशवाहक समझकर मदद दी, और, इस प्रकार फिर से पूँजीवाद ने अपने को मजबूत किया। शोषकों और शोषितों को कायम रखने वाले फासिज्म श्रमिकों के दुखों को भीतर से दूर कर नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने दूसरे देशों पर नजर गड़ायी। इटली में फासिज्म के जन्म का यह इतिहास है।

जर्मनी की जोंकें भी महायुद्ध में पराजित हुईं, लेकिन विजेता कभी यह नहीं चाहते थे कि पराजित जोंकें बिल्कुल नष्ट कर दी जायें। वह जानते थे कि जर्मनी में जोंकों का लोप इंग्लैण्ड और फ्रांस पर पूरा प्रभाव डालेगा। इसलिए उन्होंने उन्हें जीते रहने दिया। लड़ाई के बाद जर्मनी के श्रमजीवी भी अपने देश की जोंकों के अत्याचार को देखते-देखते तंग आ गये थे और उनमें बड़ी जागृति हुई तो भी शब्द के प्रयोग में प्रवीण, किन्तु मैदान में अत्यन्त कायर शिक्षित नेतागण ने उन्हें धोखा दिया और वे स्वर्ण-युग को लाने का दिलासा दे-देकर दिन बिताते रहे। जोंकें इतनी बेवकूफ न थीं। वे अवसर ताक रही थीं। जब साम्यवादी इस तरह अपने कीमती समय को बरबाद कर रहे थे, उस समय जोंकें भी मंसूबे बाँध रही थीं। युद्ध के बाद की घटनाओं को देखकर पूँजीवादियों को विश्वास हो गया कि उनके स्वार्थों की रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं श्रमजीवी-श्रेणी का हो और जिसके दिल में पूँजीवादी श्रेणी के अस्तित्व की आवश्यकता ठीक जँचती हो। नात्सिज्म ने जर्मनी में जातीय पराभव और अपमान के नाम पर लोगों को अपनी ओर खींचना शुरू किया। पूँजीवादियों ने हिटलर के भूरी कमीज वाले संगठन को दृढ़ करने के लिए अपनी थैलियाँ खोल दीं। नेताओं के विश्वासघात से पीड़ित और कर्तव्यविमूढ़ श्रमजीवी-श्रेणी धीरे-धीरे हिटलर के फरेब में फँसने लगी और 1933 तक उसने अपनी शक्ति इतनी मजबूत कर ली कि शासन की बागडोर उसके हाथ आ गयी। हिटलर के शासन के चार वर्षों - 1933 से 1937 के बीच मजदूरों की जीवन-वृत्ति जर्मनी में आधी हो गयी और पूँजीपति चैन की बाँसुरी बजाने लगे तो भी पूँजीवाद के नये अवतार फासिज्म और नात्सिज्म श्रमजीवी जनता की आँख में धूल झोंकना अच्छी तरह जानते हैं। हिटलर ने जर्मनी के स्वाभिमान को लौटाने और वृहत्तर जर्मनी के निर्माण का प्रोग्राम उनके सामने रखा। फ्रांस और इंग्लैण्ड का पूँजीवाद पूँजीपतियों के वैयक्तिक स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण श्रमजीवी जनता को अपनी ओर उतना खींच नहीं सकता था, इसलिए उन्हें फूँक-फूँककर कदम रखना पड़ता था। उधर जर्मनी पूँजीपतियों के स्वार्थ को आँख से ओझल रखकर राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा को जबर्दस्त शराब पिला रहा था। दोनों ही तरफ जोंकों के स्वार्थ का सवाल था, और दोनों ही तरफ की जोंके अपने-अपने स्वार्थ के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर रही थीं।

तीन वर्ष की तैयारी के बाद हिटलर ने जर्मन-स्वाभिमान लौटाने के लिए सबसे पहले कुछ करना चाहा। जापान ने मंचूरिया को हड़पकर दिखला दिया था कि इंग्लैण्ड,

फ्रांस और अमेरिका के पूँजीवादी आपस में असहमत और लड़ाई के लिए तैयार नहीं हैं। वह फ्रांस और इंग्लैण्ड के भीतर मतभेदों को भी जानता था और समझता था कि इंग्लैण्ड सिर्फ अपनी पगड़ी बचाना चाहता है। यही समझकर 7 मार्च, 1936 ई. को हिटलर ने जर्मन फौजें राइनलैण्ड में उतार दीं और फ्रांस तथा इंग्लैण्ड मुँह ताकते रह गये। दो बरस चार दिन बाद – जबकि मुसोलिनी अबीसीनिया में इंग्लैण्ड की कलई खोल चुका था – 11 मार्च, 1938 को हिटलर ने आस्ट्रिया को हड़प लिया। बाहर की जोंकें तिलमिला कर रह गयी। लेकिन जर्मन जोंकों की प्यास न इतने से बुझ सकती थी और न जर्मन जनता को चिरकाल तक माखन छोड़ आलू खाने के लिए तैयार रखा जा सकता था। आलू खाने को राजी रखने के लिए न जाने अभी हिटलर को और कितने काण्ड करने होंगे। 1 अक्टूबर 1938 ई. को हिटलर ने सुडेटेनलैण्ड को चेकोस्लोवाकिया से छीन लिया और 15 मार्च, 1938 ई. को सारी चेकोस्लोवाकिया को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दुनिया भर की जोंकें अगले युद्ध के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर चुकी हैं। अगले युद्ध के नर-संहार के सामने पिछला महायुद्ध कोई अस्तित्व नहीं रखेगा। जर्मनी के पास जहाँ अब आठ करोड़ आदमी जोंकों के लिए नये बाजार पर कब्जा करने के वास्ते खून बहाने को तैयार हैं, वहाँ उसने हवाई, सामुद्रिक और स्थानीय युद्धों के लिए भयंकर अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रखे हैं। अब उसके हवाई जहाजों की एक चढ़ाई में पौन करोड़ आबादी का लन्दन निर्जन हो सकता है। लड़ाई में मरने वाले सिर्फ सैनिक नहीं रहेंगे, अब तो मरने वालों में अधिक संख्या होगी निरपराध नागरिकों की। कोई बूढ़ों-बच्चों की परवाह नहीं करेगा। सभी जोंकें बड़े जोश के साथ संसार में प्रलय लाने की तैयारियाँ कर रही हैं। जिस वक्त मनुष्य जाति ने अपने भीतर पहली जोंक पैदा की थी, उस वक्त उसे क्या मालूम था कि जोंकें बढ़कर आज उसे यह दिन दिखायेंगी। इसके विनाश के बिना संसार का कल्याण नहीं। जोंको! तुम्हारी क्षय हो!

• • •

राहुल
फ़ाउण्डेशन

ISBN 978-81-87728-73-3
ISBN 81-87728-73-6
9 788187 728733

मूल्य : रु. 40.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर-घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम - शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		...
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		...
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
23. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
24. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
25. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
26. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
27. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
28. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00
29. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय ...
30. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00
31. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

3. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) ...
6. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 15.00
7. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** 10.00

अन्तोन चेख़व

8. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
10. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
11. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
12. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
13. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
14. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
15. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
16. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव ...
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **पानी है तो फूटेगा**/राजेश सकलानी नयी 100.00
2. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय नयी 125.00
3. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) नयी 100.00
4. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
5. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...
7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
8. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 130.00
9. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00

8. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
9. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
10. **ओस की बूँदें और लाल ग़ुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00
11. **इन्तिफ़ादा** : फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय ...
12. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश ...
13. **लोहू और इस्पात से फूटता ग़ुलाब** : फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems) ...
14. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00
15. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे 60.00
16. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00
17. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी ...
18. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी ...
19. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश 50.00
20. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00
21. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 125.00
22. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी ...
23. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 200.00
24. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00
25. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00
26. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
27. **यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज 60.00
28. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...
29. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर 60.00
30. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00
31. **देखते न देखते**/मलय 65.00
32. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00
33. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00
34. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
35. **तो**/शैलेय 75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की ...

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00

4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00
5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

राहुल फ़ाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1.	**नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन	15.00
2.	**क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह	15.00
3.	**मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह	15.00
4.	**बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह	15.00
5.	**जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह	15.00
6.	**भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह	15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1.	**भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम	350.00
2.	**शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह	100.00
3.	**विचारों की सान पर**/भगतसिंह	50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1.	**बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)	...
2.	**क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा	25.00
3.	**भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र	20.00
4.	**यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर	50.00
5.	**संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा	80.00
6.	**शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह	40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00

6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 25.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** 15.00
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** 15.00
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 125.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह ...

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स-एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन 60.00

15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन 80.00
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन 20.00
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन 50.00
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00
34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...
35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...
36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ ...
37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ 70.00
38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ 15.00
39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00
2. **ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
3. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
4. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र)/एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग ...

5. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव 100.00
(विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
6. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट ...
7. **इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन 25.00
8. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की 50.00
9. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00
(महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
10. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
(एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00

7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

इतिहास

1. **विस्मृत विद्रोह** : 1946 के नौसैनिक विद्रोह की प्रेरक गाथा/ सं. सुरेन्द्र कुमार 50.00 नयी

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

एक प्रति : 5 रुपये
वार्षिक : 70 रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
वेबसाइट : mazdoorbigul.net
फ़ेसबुक : facebook.com/mazdoorbigul

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का
आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय
बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर
दिल्ली-110094
ईमेल : ahwan@ahwanmag.com,
ahwan.editor@gmail.com
वेबसाइट : ahwanmag.com
फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 25 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	...
2.	**The Civil War in France**	...
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	...
4.	**Critique of the Gotha Programme**	50.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	50.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	30.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	...

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 50.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** ...
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** ...
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 75.00
30. **One Step Forward, Two Steps Back** ...
31. **The State and Revolution** 80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat,** ***Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat:** ***Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** ...

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 25.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** ...
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 70.00
40. **The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* 175.00 (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** 30.00

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 80.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...

46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy,** ***Marxist Study Courses***
   (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy**
   (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/
   Howard Selsam & Harry Martel ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)/
   Howard Selsam 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung** /George Thomson 120.00
8. **Capitalism and After**/George Thomson 100.00
9. **The Human Essence**/George Thomson 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* ...
11. **A Basic Understanding of the Communist Party**
    (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune**/
    Alexander Trachtenberg (Illustrated) 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:**
   An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography**
   by The Marx-Engels-Lenin Institute 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** / *Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / *Alok Ranjan* 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University** / *Victor Nee* with *Don Layman* ...
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 / *Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) ...

CONTEMPORARY ISSUES

New
1. **Subversive Interventions** (An Anthology) / *Abhinav Sinha* 500.00

New
2. **On the Caste Question: Towards a Marxist Understanding** / *Abhinav Sinha* 200.00
3. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint** / *Ranganayakamma* 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution /** *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism? /** *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality /** *Alok Ranjan* 20.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 30.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead /** *Alok Ranjan* 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women /** *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation /** *Mary Lou Greenberg* ...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World /** *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young /** *Peter Kropotkin* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलन: निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
(दूसरी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलन: दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तीसरी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
(चौथी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र**
(मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)/रंगनायकम्मा 120.00
2. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/*Ranganayakamma* 80.00
3. **Economics for Children**
[Lessons based on Marx's 'Capital']/*Ranganayakamma* 150.00

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	...
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटा और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हय्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की 15.00
28. **नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
29. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की 30.00
30. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
32. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
33. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
34. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
35. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00
36. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
37. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
38. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
39. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
40. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
41. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
42. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
43. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
44. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
45. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
46. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
47. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
48. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
49. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
50. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
51. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 30.00
52. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
53. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
54. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
55. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	20.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

कोंपल

बच्चों के समग्र वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए समर्पित अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

एक प्रति : 20 रुपये, वार्षिक : 100 रुपये (डाकव्यय सहित)

फ़ोन: 0522-4108495, **ईमेल :** editor.kompal@gmail.com

वेबसाइट : anuragtrust.in

फ़ेसबुक : facebook.com/kompal.childrensmagazine

पंजाबी भाषा में

शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन

और **दस्तक प्रकाशन** द्वारा प्रकाशित

मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य मँगाने के लिए इस पते पर सम्पर्क करें:

जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना- 141109 (पंजाब)

फोन : 09815587807 **ईमेल :** janchetnapb@gmail.com

नवें समाजवादी इन्क़लाब दा बुलारा

प्रतिबद्ध (तिमाही पंजाबी पत्रिका)

सम्पादकीय कार्यालय : शहीद भगतसिंह भवन
सीलोआनी रोड, रायकोट, लुधियाना-141109
(पंजाब) **फोन :** 09815587807
ईमेल : pratibadh08@rediffmail.com
ब्लॉग : http://pratibaddh.wordpress.com

एक अंक : 50 रुपये *वार्षिक सदस्यता :*
डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 150 रुपये विदेश : 50 अमेरिकी डॉलर या 35 पौण्ड

तब्दीली पसन्द विद्यार्थियाँ-नौजवानाँ दी

ललकार (पाक्षिक पंजाबी अखबार)

सम्पादकीय कार्यालय : *लखविन्दर* सुपुत्र मनजीत सिंह
मुहल्ला - जस्सडाँ, शहर और पोस्ट ऑफ़िस - सरहिन्द शहर,
जिला - फ़तेहगढ़ साहिब-140406 (पंजाब) फोन : 096461 50249 **ईमेल :**
lalkaar08@rediffmail.com **ब्लॉग :** http://lalkaar.wordpress.com

एक अंक : 5 रुपये *वार्षिक सदस्यता :* डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 120 रुपये

The Anvil

A Journal of Marxist Theory

Editor: Shashi Prakash

Editorial Office

69 A-1, Baba ka Purwa
Paper Mill Road, Nishatgunj, Lucknow 226 006, India
Phone: 9560130890, Email: editor.anvil@gmail.com

Website: http://anvilmag.in

FB: facebook.com/anvilmag

मराठी में मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशक

ऐरण प्रकाशन

मुम्बई : **शहीद भगतसिंह पुस्तकालय**, रूम 204, हिरानन्दानी बिल्डिंग, लल्लूभाई कम्पाउण्ड, मानखुर्द (प), मुम्बई, फ़ोन : 9619039793, 9145332849

अहमदनगर : **शहीद भगतसिंह पुस्तकालय**, सिद्धार्थनगर, गुगळे क्लिनिक के पीछे, अहमदनगर. फ़ोन : 9156323976, 7385242011

पुणे : 9422308125

अब तक प्रकाशित पुस्तकें

1. क्रांतिकारी कार्यक्रमाचा मसुदा – भगतसिंह / रु. 10
2. मी नास्तिक का आहे – भगतसिंह / रु. 10
3. जाति-धार्माचे झगडे सोडा – भगतसिंह / रु. 10
4. बॉम्बचे तत्त्वज्ञान – भगतसिंह / रु. 10
5. भगतसिंह म्हणाले... निवडक उद्धरणे – भगतसिंह / रु. 10
6. दहशतवाद : संभ्रम आणि वास्तव – आलोक रंजन / रु. 15
7. आरक्षण : समर्थन, विरोध आणि आमचा पक्ष – संपादक मंडळ, आह्वान कैम्पस टाइम्स / रु. 15
8. कोळी आणि माशी – विल्हेल्म लिब्कनेख्त / रु. 5
9. तरुणांना आवाहन – पीटर क्रोपोतकिन / रु. 15
10. मे दिवसाचा इतिहास – अलेक्झांडर ट्रॅक्टनबर्ग / रु. 15

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org

वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरण:

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल